इकाई 11 *बखर* और *बुरँजी**

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 साहित्यिक आख्यानों के रूप में *बखर* और *बुरँजी*

11.3 *बखर*

- 11.3.1 भाषायी और सामाजिक उत्पत्ति
- 11.3.2 स्वरूप, विषयवस्तु तथा समयरेखा
- 11.3.3 संरक्षण, लेखकत्व तथा प्रामाणिकता
- 11.3.4 आलोचना और महत्व

11.4 *बुरँजी* क्या है?

11.5 *बुरँजियों* का चयन, संग्रह और प्रस्तुति

11.6 उत्पत्ति

11.7 कुछ *बुरँजियाँ*

- 11.7.1 *देउधाइ बुरँजी*
- 11.7.2 *कामरूपोर बुरँजी*
- 11.7.3 *पादशाह (बादशाह) बुरँजी*
- 11.7.4 *त्रिपुरा बुरँजी*
- 11.7.5 *तुंगखुंगिया बुरँजी*

11.8 सारांश

11.9 शब्दावली

11.10 बोध प्रश्नों का उत्तर

11.11 संदर्भ ग्रंथ

11.12 शैक्षणिक वीडियो

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम हो पाएँगेः

- अतीत को समझने के लिए ***बखरों*** की एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में पहचान करने में,
- *बखर* के सामाजिक और शब्दशास्त्रीय मूल को समझने में,
- *बखरों* को लिखवाए जाने और इनकी रचना को समझने में,
- ***बुरँजी*** के ऐतिहासिक मूल को चिह्नित कर पाने में, और
- असम के इतिहास के निर्माण में *बुरँजियों* के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करने में।

11.1 प्रस्तावना

मौखिक परम्परा और लिखित ग्रंथों, दोनों, में मौजूद ऐतिहासिक चेतना क्षेत्र-विशेष की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है जिसे निरंतर आगामी पीढ़ियों को हस्तांतरित कर सुरक्षित बनाए रखा जाता है।

* **डॉ. रचना मेहरा, स्कूल ऑफ ग्लोबल अफ़ेयर्स, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली; तथा डॉ. धारित्री नरज़ारी चक्रवर्ती, स्कूल ऑफ लिबरल स्टडीज़, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली**

अतीत का प्रत्येक रूप या संस्करण जो वर्तमान के लिए महत्व रखता है, इसकी वैधता और स्थायित्व को सुनिश्चित करने के लिए, उसे विशेष महत्व दिया जाता है। 'इस प्रकार के विवरण का अंकन इस तरह का हो सकता है कि उसमें ऐतिहासिक चेतना अंतर्बद्ध स्वरूप की होः जैसे मिथकों, महाकाव्यों और वंशावलियों में; या वैकल्पिक रूप से इसका संदर्भ अधिक मूर्त स्वरूपों से हो सकता हैः परिवारों, संस्थानों और क्षेत्रों के इतिवृत्तात्मक लेखन या सत्ताधारी व्यक्तियों के जीवन-चरित्। किसी एक प्रकार के स्वरूप से दूसरे स्वरूप का कोई क्रमिक या निर्धारित विकास नहीं होता है और अंतर्बद्ध चेतना के कई पहलू दूसरे क़िस्म की ऐतिहासिक चेतना में भी देखे जा सकते हैं, चाहे उन्हें सायास समाहित किया गया हो या अवचेतनात्मक रूप से। जिस सीमा तक यह स्वरूप परिवर्तित या एक दूसरे में व्याप्त रहते हैं इसका प्रभाव प्रधान सामाजिक संरचनाओं पर पड़ता है' (थापर 2000: 124)। इस प्रकार कोई ऐतिहासिक आख्यान प्रचलित राजनीतिक, विचारधारात्मक और सामाजिक दुनिया के घटकों में होने वाले बदलावों के मिलन-बिंदु पर निर्भर रहता है।

इनमें से कुछ आख्यान लोकप्रिय स्मृति का हिस्सा बन जाते हैं, जहाँ उन्हें एक निश्चित प्रकार की विरासत को व्यक्त करने के लिए ढाला जाता है। चेतन सिंह के अनुसार, 'लोकप्रिय स्मृति में ऐतिहासिक चरित्रों को नया रूप प्रदान करने और घटनाओं को एक बिल्कुल अलग ही दृष्टिकोण में वर्णित करने की क्षमता होती है। भारतीय उपमहाद्वीप की पूर्व-औपनिवेशिक घटनाओं और राजनीतिक इकाइयों ने उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय परंपराओं को आकार प्रदान किया है। उदाहरण के लिए, मुग़ल शासन का मेवाड़ द्वारा प्रतिरोध, 17वीं शताब्दी में सिखों और मराठाओं का लंबा संघर्ष और औरंगज़ेब की सेना के विरुद्ध **अहोमों** के युद्ध को भी ना भूलें, यह हिंदुस्तान के इन विभिन्न क्षेत्रों में लोकप्रिय ऐतिहासिक स्मृति का महत्वपूर्ण हिस्सा बना हुआ है। यह ऐसी स्मृति है, जिसे वे क्षेत्रीय नायक जीवंत बना देते हैं जिन्होंने सफलतापूर्वक साम्राज्य के उन अधिकारियों को चुनौती दी जो आततायी तथा शोषक थे। विजय तथा पराजय, दोनों, में मुग़ल सत्ता और उसकी साम्राज्यिक छवि की क्षेत्रीय ऐतिहासिक चेतना में गहरी उपस्थिति रही है' (सिंह 2018: 5-6)।

बुरँजी परम्परा को मध्यकालीन असम के अहोम शासन से घनिष्ठ रूप से जोड़ा जाता है, किंतु समय के साथ-साथ यह इस राज्य के इतिहास का भी प्रतिनिधित्व करने लगी है। इसका कारण असम में अहोमों के आगमन से पूर्व शासन करने वाले वंशों के बीच इतिहास लेखन की परंपराओं की अनुपस्थिति है। अहोम पहले से मौजूद कई नृजातीय और सांस्कृतिक समूहों के साथ अंतर-मिश्रित हुए और अपनी राजनीतिक आभा के विस्तार के साथ इन लघु इकाइयों को स्वयं में समाहित करने में समर्थ हुए, इस प्रक्रिया में उन्होंने विभिन्न ग़ैर-अहोम सांस्कृतिक तत्वों को भी अपनाया।

अहोम शासन 1228 से 1826 तक 600 सालों तक कायम रहा और इस लंबे काल में वे कई नृजातीय रूप से भिन्न और शक्तिशाली समूहों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने में सफल हुए, जो असम के इस अहोम साम्राज्य का हिस्सा बन गए। इसे कई प्रकार की रणनीतियों और कूटनीतिक तरीकों से प्राप्त किया गया, जिनमें इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण सत्ताधारी घरानों के साथ युद्ध, दमन और विवाह के माध्यम से स्थापित संबंध महत्वपूर्ण थे, जिसमें मणिपुर और कूच-राज्य भी शामिल हैं। इससे असम के समाज के वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक परिवेश की व्याख्या भी होती है।

ऐतिहासिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में विस्तार रखने वाले *बखर* मराठों के अतीत का एक रचनात्मक और विचारोत्तेजक रूप प्रस्तुत करते हैं (देशपांडे 2007: 205)। हालांकि तथ्यों को आविष्कृत किया जा सकता है, तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है या प्रश्नांकित किया जा सकता है, लेकिन प्रत्येक तथ्य के पीछे निहित विचारधारा और व्याख्या के आधार को समझना मुश्किल है। ऐतिहासिक चेतना का निर्माण एक सृजनात्मक कार्य है और साहित्यिक लेखकों को तथ्य के बजाय भ्रम पैदा करने के दोष से मुक्त किए जाने की आवश्यकता है। तथ्यात्मक सटीकता पर संदेह किया जा सकता है लेकिन लोकप्रिय स्मृति तथा क्षेत्रीय आख्यान में निहित विश्वासों की वैधता पर नहीं।

इसी प्रकार *बुरँजी* परम्परा भी ऐतिहासिक लेखन की एक विशेष शैली का प्रतिनिधित्व करती है जिसे असम के अतीत के पुनर्निर्माण हेतु विश्वसनीय स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया है। एक संस्थागत ऐतिहासिक परम्परा के रूप में *बुरँजी* – सरकारी या निजी – स्वयं में सामाजिक और राजनीतिक प्राधिकार के रूप में कार्य करने की क्षमता रखती थी। आधुनिक काल में असम के बुद्धिजीवियों द्वारा

असमी पहचान के पुनर्निर्माण में इसके निर्वचन और उपयोग ने यह दर्शाया है कि किस प्रकार ऐतिहासिक परम्परा को लोकप्रिय बनाकर एक क्षेत्रीय राष्ट्रवादी भावना का विकास संभव है।

11.2 साहित्यिक आख्यानों के रूप में *बखर* और *बुरँजी*

आरम्भिक आधुनिक क्षेत्रीय राज्यों में राज्य के उत्तराधिकार की परम्परा ने साहित्य को राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ घनिष्ठ निकटता प्रदान की थी। स्टुअर्ट गॉर्डन के अनुसार यह उन राज्यों के बारे में विशेष रूप से सत्य था जहाँ ज्येष्ठाधिकार का सामान्य नियम लागू नहीं होता था। यहाँ शासक अपने उत्तराधिकार का औचित्य अपने को प्रजा के उदार और सुदृढ़ संरक्षक के रूप में स्थापित करके, जन्म व वंशावली, इत्यादि को समाहित करते हुए, अति विशिष्ट निजी गुणों का प्रदर्शन करके सिद्ध करते थे। यहाँ साहित्य तथा प्रतिरूपण की अन्य सौंदर्यात्मक रीतियाँ इन गुणों को अभिव्यक्त करने और शासक के उत्तराधिकार को वैधता प्रदान करने का प्रभावशाली माध्यम बन जाती थीं (गॉर्डन 1993ः 368-369)। इसके अतिरिक्त सुमित गुहा इस तथ्य की भी पुष्टि करते हैं कि भूमि और सम्मान के दावों के लिए प्रासंगिक लोक-आख्यानों को नियंत्रण में रखना आवश्यक था जिसके द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक स्मृति को संरचनाबद्ध किया गया था (गुहा 2019ः 7-8)।

मध्यकालीन महाराष्ट्र में कुछ चारण और कथा-वाचकों ने ऐतिहासिक विषय-वस्तुओं पर विचार किया था और वीरगाथा (*पोवाड़ा*), रूमानी काव्य (*लावणी*), इतिवृत्तांत/वंशावली (***शाकावली***), इतिवृत्त (*बखर*), पारिवारिक विवरण (*कैफ़ियत*) और संत-कवियों के जीवन चरित्र (*संत-चरित*) जैसे साहित्य का सृजन किया (दीक्षित, 2009ः 11)। यह उनके द्वारा अपने तरीके से बखान किया गया 'इतिहास' था, इसमें सामान्यतः इसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करने के लिए आवश्यक सावधानी का अभाव था। बहरहाल, यह अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस साहित्य का गहरा ऐतिहासिक मूल्य है, इसकी तथ्यात्मक सटीकता के लिए नहीं बल्कि इस कारण से कि इसने एक ऐतिहासिक चेतना को संभव बनाया, अतीत के विषय में सोचने और लिखने के लिए (देशपांडे 2013ः 10)।

सुदूर पूर्वोत्तर, जो मोटे तौर पर भारत की ऐतिहासिक परिकल्पना से बाहर ही रहा था, जब तक कि भारत का स्वतंत्रता आंदोलन इस क्षेत्र में फैल नहीं गया, में जीवंत ऐतिहासिक परम्पराएँ मौजूद रही थीं जिनमें राजवृत्तांतों जैसे *बुरँजी* (असम), *राजमाला* (त्रिपुरा) और *चेइथारों कुंपापा* (मणिपुर) शामिल हैं। जहाँ इन इतिवृत्तों को सत्ताधारी वंशों के दरबारी वृत्तांतों की श्रेणी में रखा जा सकता है, वहीं 13वीं शताब्दी से *बुरँजी* परम्परा असम के अहोम लोगों में विद्यमान मज़बूत ऐतिहासिक बोध की उपस्थिति का संकेत करती है। वंशात्मक विवरणों के अतिरिक्त असम में वंशावली ग्रंथों की उपस्थिति भी क्षेत्रीय संदर्भ में ऐतिहासिक चेतना की उपस्थिति का संकेत करती है। दूसरी ओर, इन ऐतिहासिक परंपराओं के माध्यम से इस क्षेत्र की व्यापक भारतीय परंपराओं के साथ हुई अंतर-क्रिया की प्रकृति को समझा जा सकता है, जिनमें संस्कृत और फ़ारसी का नज़र आने वाला प्रभाव शामिल है (चटर्जी 2008)।

11.3 *बखर*

मराठा राजव्यवस्था के निर्माण में *बखर* महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वह कई महत्वपूर्ण घटनाओं को दर्ज करते हैं इनमें से कुछ मराठा-काल के प्रमुख राज्याधिकारियों की जीवनियाँ हैं। यद्यपि वे किसी निष्ठावान अधीनस्थ द्वारा अपने शासक के प्रति लिखी गई रचनाएँ प्रतीत होती हैं। इस प्रकार वंशात्मक पहचान ने क्षेत्रीय गौरव के साथ मिलकर और उस पर आधारित होकर एक सामूहिक गौरवपूर्ण अतीत का निर्माण किया (गुहा 2019ः 106)।

11.3.1 भाषायी और सामाजिक उत्पत्ति

बखर **गद्यात्मक** ऐतिहासिक आख्यान हैं जिन्हें 16वीं शताब्दी में रचित किया गया था, लेकिन इनमें से अधिकांश की रचना 17वीं शताब्दी के आखिर से लेकर आरंभिक 19वीं शताब्दी तक हुई है (देशपांडे 2007ः 20)। ये आख्यान, जिनकी संख्या लगभग 200 है, महान् शासकों की जीवनियों, प्रधान परिवारों की वंशालियों या प्रमुख युद्ध के विवरणों के रूप में लिखे गए हैं। *बखर* को मराठी की एक गद्य शैली के रूप में जाना जाता है, जिसमें वास्तविक ऐतिहासिक मूल्य से अधिक साहित्यिक गुण प्रबल हैं।

बखर शब्द की उत्पत्ति को लेकर कई दृष्टिकोण प्रचलित हैं। इनमें से कुछ का मानना है कि *बखर* अरबी शब्द *ख़बर* से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अभिप्राय सूचना या जानकारी से होता है और संभवतः इसका विकास *अख़बार* या 17वीं और 18वीं शताब्दियों में खुफ़िया सूचनाओं के लिए प्रयुक्त होने वाले फ़ारसी-अरबी शब्द से हुई है। एस. एन. जोशी इसका प्रतिवाद करते हुए कहते हैं कि *बखर* अक्सर अधिकांश ग्रंथों के अंत में आता है, संभव है कि इसकी उत्पत्ति फ़ारसी शब्द *ख़ैर* या *बाख़ैर* से हुई हो। यह अंतिम भाग में आए अभिवादन की अभिव्यक्ति है, जिसका तात्पर्य 'सब कुछ कुशल है' से है। इसके विपरीत विद्वानों का एक अन्य समूह यह सुझाव देता है कि *बखर* का अनुवाद ***आख्यायिका*** है जो *ख़बर* अर्थात *वार्ता* या समाचार से भिन्न है। इसकी व्युत्पत्ति पुरातन पौराणिक *आख्यायिका* से हुई है जिन्हें एक प्रकार का साहित्य, ऐतिहासिक घटना और चरित्रों पर आधारित रचनात्मक कहानियाँ माना जाता माना जाता था, यहाँ महत्वपूर्ण विचार यह है कि एक तरह का पाठ जो केवल साहित्यिक गुणों को धारण करने के बजाए ऐतिहासिक घटनाओं को भी साथ-साथ बखान कर सकता था (देशपांडे 2007ः 21)।

भले ही इसका मूल कुछ भी रहा हो यह शब्द 1670 के दशक तक निश्चित रूप से आधिकारिक उपयोग में स्थापित हो चुका था, जब मराठा संप्रभु शासक शिवाजी ने विषय-आधारित संस्कृत शब्दकोश तैयार करने का आदेश दिया ताकि राज्य-कला (राज-काज) में '***यवनी***' (इस्लामी) शब्दों के अत्यधिक प्रयोग को कम किया जा सके (गुहा 2004)। दक्खन सल्तनतों के अधीन मराठा सरदारों ने अपनी सेवा में फ़ारसी लेखकों को नियुक्त किया था और अधिकारी-तंत्र में शामिल अधिकांश लोग फ़ारसी भाषा से परिचित थे जब तक कि खुले तौर पर वंशावलियों और परिवारों के इतिहास लेखन में मराठी के प्रयोग को प्रोत्साहित न किया जाने लगा (गुहा 2004[ख]: 23-31; देशपांडे 2007ः 221)।

सुमित गुहा, जिन्होंने 17वीं शताब्दी से *बखरों* की सामाजिक उत्पत्ति का अन्वेषण किया है, यह सुझाव देते हैं कि स्थानीय घटनाओं और जानकारियों को दर्ज करने वाले तथ्यात्मक विवरणों का उदय अधिकारी-तंत्र की शक्ति के एक दोहरे संदर्भ में प्रयोग के माध्यम से हुआ था। प्रथमतः, मराठा शासन ने 1650 के दशक में सीमांत क्षेत्रों पर विजय पाने के बाद स्थानीय जानकारी जुटाना शुरू किया ताकि किसी क्षेत्र-विशेष की करों की दरों और प्रशासनिक व्यवस्था के विषय में सूचनाओं को एकत्रित किया जा सके। इसके परिणामस्वरूप विस्तृत ऐतिहासिक विवरण तथा स्मृति-लेख वंशानुगत अधिकारियों द्वारा सृजित हुए। द्वितीय, अतीत के यह विवरण मध्यकालीन महाराष्ट्र की क़ानूनी कचहरियों में पैतृक संपत्ति-संबंधी क़ानूनी विवादों को निपटाने के लिए महत्वपूर्ण थे (गुहा 2004ः 1084-2004)। पुरातन होने के विचार ने विवादों के समाधान को रास्ता दिखाया क्योंकि वह राज्य के भीतर अधिकारों की उद्‌घोषणा करने में अनुल्लंघनीय बन गए थे। इनकी रचना परिवारों द्वारा भूमि के अनुदानों और पदों को सुरक्षित करने के लिए मराठा प्रशासन के साथ समझौता करने हेतु की गई थी। ये विवरण भूमि अनुदान या भूमि संबंधी लेन-देन का साक्ष्य देने के अलावा इन्हें महत्वपूर्ण घटनाओं के व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत करते थे ताकि प्रतिपक्ष द्वारा किए जा रहे प्रतिकूल दावों का प्रतिवाद किया जा सके।

स्थानीय विवादों की सुनवाई, जैसा कि आंद्रे विंक ने संकेत किया है, अधिकांशतः सभाओं, *गोतसभा, मजलिस*, इत्यादि में होती थी (विंक 1986)। इन न्यायिक प्रक्रियाओं ने परिणामस्वरूप विरासत में मिलने वाली अधिकारिता के संदर्भ में एक विमर्श को जन्म दिया, और इस प्रकार *बखर* नृजातीय गौरव और स्थानीय भू-स्वामियों द्वारा किए गए क्षेत्रीय प्रभुता के दावों के अनुकूल बैठते थे (गुहा 2004 [ख]: 25)। इन विवरणों की सार्वजनिक सभाओं द्वारा पुष्टि की जाती थी, जिनमें विभिन्न धार्मिक और सामाजिक पृष्ठभूमि के लोग शामिल होते थे, जो स्थानीय ज्ञान पर चर्चा करने और उसे नया रूप प्रदान करने के लिए एकत्र हुआ करते थे (गुहा 2004 [क]: 1096)।

11.3.2 स्वरूप, विषयवस्तु तथा समयरेखा

स्वतंत्र मराठा राज्य की स्थापना 1650 के दशक में हुई थी और इसने व्यापक ऐतिहासिक आख्यानों के सृजन की परिस्थितियों को पैदा किया जो स्थानीय और व्यापक क्षेत्रीय घटनाओं को आपस में जोड़कर अतीत का उपयोग करते थे जिनमें से अधिकांश का सार्वजनिक सभाओं द्वारा प्रमाणीकरण किया जाता था (देशपांडे 2007ः 22)। जब मराठा शक्ति का 1670 के दशक के बाद विस्तार हुआ, दैनिक और साप्ताहिक आधार पर ख़बरों का आदान-प्रदान दिन-प्रतिदिन के प्रशासन और नीति निर्माण

के लिए महत्वपूर्ण हो गया था। 18वीं शताब्दी तक मराठी-भाषी कुलीन तथा अधिकारी वर्ग का विस्तार उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में हो चुका था जिसने इस क्षेत्रीय राज्य के प्रामाणिक विवरणों को लिखे जाने की आवश्यकता को जन्म दिया।

बखर को अधिकांशतः गद्य रूप में लिखा गया है, इसकी प्रधान शैली किसी विशेष मामले के संबंध में एक कनिष्ठ अधिकारी द्वारा अपने वरिष्ठ को लिखे गए पत्र के रूप में थी। ये विवरण कई पृष्ठों तक फैले हुए होते हैं और इन्हें कई प्रकार के भाषायी प्रभाव में लिखा गया है। स्थानीय मराठी कहावतें, फ़ारसी प्रशासनिक शब्दावलियों और संस्कृत के मुहावरों के साथ-साथ घुली-मिली हुई है। इनमें से कई रोज़ाना के प्रशासनिक मामलों की जानकारियों से भरे हुए हैं। इनमें तथ्य और कथाएँ आपस में मिलकर अतिशयोक्ति-परक चित्रण पैदा करते हैं। पौराणिक दंत-कथाएँ, दैवीय हस्तक्षेप और शारीरिक शक्ति की नाटकीय कथाएँ प्रशासनिक तथा सैन्य प्रक्रियाओं के नियमित विवरण के साथ-साथ नज़र आती हैं (देशपांडे 2007: 20)। ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण और उनकी पुनर्रचना में साहित्यिक तथा रूपक-संबंधी अलंकरण अंतर्निहित था। एक प्रकार से, *बखर* ने एक विवरण प्रस्तुत करने के लिए *आख्यायिका* के वर्णनात्मक ढाँचे और *अख़बार* के रिपोर्ताज़ के स्वरूप को आपस में मिलाया (देशपांडे 2007: 28)।

समय रेखा

आरंभिक मराठी *बखर* सोलहवीं शताब्दी के हैं लेकिन उनमें से अधिकांश की रचना 17वीं शताब्दी के आख़िर से लेकर 19वीं शताब्दी तक की गई थी (देशपांडे 2007: 20)। यद्यपि कुछ विद्वान इनके मूल को और भी पहले के काल में स्थापित करते हैं। कमारकर का सुझाव यह है कि *महिकावातीची बखर* (पद्य तथा गद्य, दोनों, रूपों में उत्तरी कोंकण क्षेत्र की ऐतिहासिक घटनाओं को दर्ज करने वाला) 14-15वीं शताब्दी के मध्य कई लेखकों द्वारा लिखा गया था।

कुछ चुने हुए *बखरों* की सारणी

बखर का नाम/वर्ष	लेखक	शैली की विशेषता	अधिकर्ता
सभासद बखर (1694)	कृष्णाजी अनंत सभासद (जिंजी में मंत्री)	शिवाजी के प्रारम्भिक जीवनी-परक वृत्तांत	शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम द्वारा
चिटनिस बखर (1811)	मल्हार रामराव चिटनिस (साहू द्वितीय के सतारा दरबार के वरिष्ठ लेखक)	शिवाजी का जीवनी-परक विवरण, भोंसले वंश का वंशक्रम	शाहू
पेशव्यांची बखर (1818)	कृष्णाजी विनायक सोहोनी (पेशवा का अधिकारी)	पेशवाओं का इतिहास (18वीं शताब्दी) (वंशावलीय विवरण तथा मराठा शक्ति के विस्तार का विश्लेषण)	–
भाऊसाहेबांची बखर (18वीं शताब्दी के अंतिम हिस्से में)	–	पानीपत के युद्ध (1761) का विवरण	महादजी शिंदे
शेडगांवकर बखर (1924)	विनायक लक्ष्मण भावे	–	–
महिकावातीची बखर	केशवाचार्य और नायकराव	12वीं से 16वीं शताब्दी के बीच कोंकण क्षेत्र का इतिहास	–

स्रोतः प्राची देशपांडे, (2007) *क्रिएटिव पास्ट्स, हिस्टॉरिकल मेमरी एंड आइडेंटिटी इन वेस्टर्न इंडिया 1700-1960*, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली, पृ. 21.39; और अनिल नावरकर, 'सोर्सेज़ ऑफ़ मराठा हिस्ट्री,' *इंडियन सोर्सेज़*', *Academia.edu*, पृ. 1-10

यहाँ हम कुछ पृथक-पृथक *बखरों* में दी गई जानकारी पर नज़र डालेंगे।

सभासद बखर

राजाराम (शिवाजी के द्वितीय पुत्र) ने *सभासद* बखर के रूप में शिवाजी की जीवनी लिखने का आदेश दिया था जिसे कृष्णा जी अनंत सभासद द्वारा 1694 में रचा गया और इसे राजाराम को संबोधित पत्र

के रूप में लिखा गया (देशपांडे 2007: 25)। इसकी शुरुआत अहमदनगर निज़ाम के दरबार में मालोजी, शिवाजी के दादा, की सेवा और मराठा राज्य की स्थापना के वर्णन से होती है तथा शिवाजी की मृत्यु के साथ इसका समापन होता है। इसकी शुरुआत उस पृष्ठभूमि में होती है जिसने 1680 के दशक में संकट को जन्म दिया और जिसका परिणाम मराठा राज्य के उदय के रूप में निकला। एक प्रकार से यह *बखर* 'इसके प्रारंभ में चिह्नित इस केंद्रीय प्रश्न का व्यवस्था-पूर्ण चयन है'। यह उस ऐतिहासिक समस्या को समझने और विश्लेषण करने का प्रयास करता है जिसके लिए लेखक शिवाजी तथा औरंगज़ेब के बीच सत्ता के केंद्र में परिवर्तन की व्याख्या करते हुए एक योग्य समाधान प्रस्तुत करता है। यह विवरण मुग़ल साम्राज्य की भयोत्पादक शक्ति से युवा और उद्यमी शिवाजी द्वारा प्रतिरोध में प्रस्तुत चुनौती की ओर जाता है, जिसने चतुराई के साथ बादशाह द्वारा उसे सीमित करने और बंदी बनाए जाने के समस्त प्रयासों को व्यर्थ बना दिया था (देशपांडे 2007: 26)।

चिटनिस बखर

मल्हार रामराव शिव चिटनिस द्वारा शिवाजी की यह जीवनी लगभग एक शताब्दी बाद लिखी गई, जो इस शासक के उदय में दैवीय हस्तक्षेप के दावे को स्थापित करने का प्रयास करती है। इसमें यह संकेत मिलता है कि कई वर्षों तक विदेशियों के शासन के बाद श्री शिवाजी छत्रपति ने अपने कृत्यों और असाधारण अभियानों के माध्यम से राज्य की पुनर्स्थापना की। शिवाजी के पूर्वजों की वंशावली के पौराणिक मूल को चिह्नित करने की कोशिश की गई है। यद्यपि यहाँ पौराणिक आचारशास्त्रीय साँचे के अनुरूप एक आदर्श चरित्र और नैतिक आचरण को ग्रहण करने का प्रयास दिखाई देता है, तब भी इसमें किए गए तर्क तथा विश्लेषण उस संसार-विशेष में 'स्वीकृत सत्ता के ढाँचों में स्थित थे' जिनमें प्रसारित किए जाने के लिए इन ग्रंथों को रचा जा रहा था (देशपांडे 2007: 30)। कालानुक्रमिक विवरण पेश करने के बजाए इसमें विषयवस्तु के आधार पर सात भाग हैं जो दक्खन की राजनीति में मराठा राज्य की स्थापना को एक काल-विभाजक बिंदु के रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक प्रकार से मराठा राज्य की शक्ति के विस्तार, प्रशासनिक जानकारियों, दक्षिणी अभियानों और शिवाजी के राजतिलक के वर्णनात्मक विश्लेषण में सत्य का कुछ निचोड़ हो सकता है (देशपांडे 2007: 27)।

बखरों में भविष्यवाणी और भविष्य-कथन देखने को मिलते हैं और महत्वपूर्ण घटनाओं, जैसे मराठा राज्य की स्थापना या पतन, को दैवीय इच्छा के परिणामस्वरुप घटित होना दर्शाया जाता है। शिवाजी के जीवनीकार उन्हें एक साक्षात् अवतार या एक दैवीय पुरुष के रूप में दिखाते हैं, और भवानी मराठों की संरक्षित देवी के रूप में वर्णित हैं, जो प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में शिवाजी के कृत्यों को वैधता प्रदान करने में सहायक होता है। यह एक सुज्ञात तथ्य था कि अज्ञात मूल के राजवंश को दैवीय हस्तक्षेप के माध्यम से वैधता पाने की आवश्यकता थी। अगर कोई जीवनी किसी शासक के शासनकाल या उसके आस-पास लिखी गई होती थी तो राजवंश का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करना और उसके संरक्षक के जीवन में घटित होने वाली प्रमुख घटनाओं का वर्णन करना एक सामान्य परम्परा थी। यह विशेष रूप से सत्य था, जहाँ उत्तराधिकार विवादास्पद था, और इस प्रकार की जीवनियाँ संरक्षणदाताओं के शासन के राज्याधिकार का औचित्य साबित करती थीं (थापर 2003: 167)।

आरंभिक 19वीं शताब्दी में लिखा गया *चिटनिस बखर* शिवाजी द्वारा सूचना विभाग के तंत्र को स्थापित करने के लिए लागू की गई नीतियों की चर्चा करता है। सूचना उपलब्ध कराने के कार्य के लिए *हलकारों* की नियुक्ति की गई थी। राज्य के अंदर और बाहर की सूचनाओं को *अख़बारों* (समाचारों के प्रतिवेदन), *लखोतेपत्र* (बंद पत्र) और *ज़बानी* (मौखिक साक्ष्य) के माध्यम से मुंशियों, सैन्य अधिकारियों, मुखियाओं द्वारा इकट्ठा किया जाता था। इन सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से संकलित किया जाता था और *चिटनिस* को सौंपा जाता था तथा जिसे महाराज को दैनिक आधार पर सूचित करने के लिए इन्हें संक्षिप्त बनाकर *यादी* (सूचियों) के रूप में तैयार किया जाता था (देशपांडे 2007: 23)।

भाऊसाहेबांची बखर

भाऊसाहेबांची बखर को पानीपत के युद्ध के कई दशकों बाद लिखा गया था। यह अहमद शाह अब्दाली की अफ़ग़ान फ़ौजों के समक्ष मराठों की पराजय का विश्लेषण करती है। यह पराजय के कारणों की पहचान 1750 से 1761 के बीच राजनीतिक गठबंधनों में होने वाले परिवर्तनों में करती है, जिसमें मध्य भारत में शिंदे और होल्करों के बीच प्रतिस्पर्धी महत्वाकांक्षा और मुग़ल दरबारियों,

अवध के नवाब, रोहिल्ला, राजपूतों और जाटों के साथ राजनीतिक संबंधों के तंत्र में बदलती स्थितियाँ भी शामिल हैं। पेशवा और उसके भाई भाऊ साहब, जो मराठा सैन्य बलों के सेनानायक थे, व्यक्तिगत क्लेशों, कूटनीतिक ग़लतियों तथा सैन्य रणनीतियों, जो असफल सिद्ध हुईं तथा जिन्होंने मराठा शक्ति को कमज़ोर कर दिया था, से हतप्रभ रह गए थे (देशपांडे 2007: 28)।

जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है वे इस विवरण के रैखिक स्वरूप को बाधित नहीं करती हैं बल्कि 'असाधारण कृत्यों और घटनाओं को रेखांकित करने में सहायता करती हैं और ये उस नैतिक दुनिया का हिस्सा होते हैं जिसके अंतर्गत *बखर* लेखक अपने विवरण के मुख्य पात्र के कृत्यों और उनके परिणामों का आकलन करता है' (देशपांडे 2007: 29)। पानीपत में मराठा पराजय को विभिन्न मराठा सरदारों के नैतिक रूप से भ्रष्ट आचरण का परिणाम भी बताया गया है जिन्होंने पवित्र तीर्थों को दूषित किया या ब्राह्मणों को सताया था।

यह *भाऊ बखर* उस परिवेश से संबंध रखता है जिसे 18वीं शताब्दी की मराठा शक्ति (1730-1800) की सामाजिक परियोजना ने सृजित किया था, और इसे उत्तर भारतीय परिस्थितियों से परिचित किसी व्यक्ति द्वारा उत्तर भारत में लिखा गया था, संभवतः 1761 के बाद। इसके विपरीत *पानीपतची बखर* को महाराष्ट्र में लिखा गया था और इसमें ब्राह्मणीय अंतःतत्व की अधिकता है। 18वीं शताब्दी के मध्य तक मराठा अपनी सैन्य शक्ति और राजनीतिक शासन को उत्तर भारत यानी 'हिंदुस्तान'[1] में प्रक्षेपित कर रहे थे (देशपांडे 2013: 6)।

महिकावातीची बखर

इस *बखर* का सूक्ष्म अध्ययन सुमित गुहा के मराठा काल से भी पहले *बखरों* की सामाजिक उत्पत्ति के तर्क को मज़बूत करता है। इस *बखर* की रचना का उद्देश्य केशवाचार्य द्वारा विस्तार से बताया गया है। नायक राव देसल, मलाड के एक स्थानीय वंशानुगत अधिकारी, को 'श्री देवी आद्यशक्ति जगदंबिका महाराष्ट्-धर्म-रक्षिका' का स्वप्न आया, जिन्होंने उत्तरी कोंकण क्षेत्र के सभी स्थानीय अधिकारियों और ब्राह्मणों की गोष्ठी बुलाने और उन्हें 'महाराष्ट्र धर्म' के विषय में जागरूक करने का आदेश दिया। इस गोष्ठी का आयोजन इस क्षेत्र में 'म्लेच्छ' शासन की शुरुआत से ठीक पहले हुआ था और इसका इरादा 'स्वधर्म' तथा 'महाराष्ट्र धर्म' की रक्षा का आह्वान करना था।

यह ध्यान में रखना दिलचस्प है कि प्रत्येक *बखर* की रचना के पीछे एक विशेष प्रेरक तत्व था। उदाहरण के लिए, बदलते राजनीतिक हालात, *देसलों* के बीच बारंबार होते झगड़े और नए शासकों से वैधता प्राप्त करने और उसे बनाए रखने की आवश्यकता *महिकावातीची बखर* की रचना के पीछे मुख्य उत्प्रेरक कारक थे। इसमें विभिन्न *देसलों*, अर्थात वंशानुगत अधिकारियों, की वंशावलियाँ या उनके क्षेत्राधिकार में आने वाले गाँवों की *जमा* (अनुमानित राजस्व) में उनके हिस्से की जानकारियाँ शामिल हैं।

बखर की शैली इस आधार पर भी भिन्नता रखती थी कि उसमें किस बात पर बल दिया गया है, जैसे *पेशव्यांची बखर* में प्रारंभिक 18वीं शताब्दी से पेशवाई इतिहास को संकलित किया गया है और इसमें नाना साहेब पेशवा के ईमानदार और समृद्ध शासन को अनैतिक बाजीराव द्वितीय के अधीन पतन के विपरीत दर्शाया गया है (देशपांडे 2007: 30)। कुछ मामलों में यह शैली प्रशंसात्मक थी तथा अक्सर घटनाओं की तिथियों और स्थानों को लेकर भ्रमपूर्ण स्थिति थी। *सभासद बखर* और *कलमी बखर* अपने तथ्यों तथा उन वीरतापरक तथा त्रासदीपूर्ण घटनाओं, दोनों, के लिए महत्व रखती हैं जिन्होंने महाराष्ट्र में लोकप्रिय इतिहास का आधार तैयार किया है (गॉर्डन 1993: 1)।

अगला भाग हमें इन *बखरों* के लिखे जाने के पीछे की प्रेरणा को समझने में सहायता करेगा। लेखक की भूमिका और उसके इरादे, इन ग्रंथों की सत्यता को कैसे स्थापित किया जाए और इसके राजनीतिक तथा लोकप्रिय उपयोगों की पहचान करने में सहायता करेगा।

11.3.3 संरक्षण, लेखकत्व तथा प्रामाणिकता

बखर विवरण उस क़ानूनी और अधिकारी-तंत्र की दुनिया में उदित हुए जो दक्खन में समय के साथ-साथ विकसित हुआ था। *बखर* इतिहास लेखन की 'एक केंद्रीय विशेषता सत्ता के वर्णन,

[1] *बखरों* में आमतौर पर उत्तर भारत को लक्षित करने के लिए 'हिन्दुस्तान' शब्द का प्रयोग किया गया है।

जो मराठा राजनीतिक परिवेश में विभिन्न अभिकर्ताओं की वैधता के दावों को सामने रखते थे, तथा उस निर्लिप्त आलोचनात्मक स्वर जिसने नैतिक दुनिया के भीतर से इन ऐतिहासिक चरित्रों, घटनाओं और परिणामों पर टिप्पणी की है, के बीच तनावों की उपस्थिति थी' (देशपांडे 2007ः 39)।

ये विवरण उन लिपिकों और पढ़े-लिखे अधिकारियों की सामाजिक दुनिया को सामने लाते हैं जिन्होंने इनकी रचना की थी। *बखर* हमारे सम्मुख अधिकारी-तंत्रीय मराठा राज्य के विशिष्ट लेखन कौशल का एक दृश्य प्रस्तुत करते हैं जहाँ लिखित शब्द फलता-फूलता बौद्धिक उद्यम बन गया था। कागज़ पर लिखी गई सभी प्रकार की सूचनाओं के लिए उनको बोलकर लिखाने वाले और इन पत्रों को लिखने तथा पहुँचाने वालों की भी आवश्यकता थी। *चिटनिस*, जो लिपिकों के परिवार से आते थे, और जिन्हें शाही पत्र लिखने का कार्य सौंपा गया था, जिनमें वे पत्र भी शामिल हैं जिनका संबंध राजनीतिक समझौतों से होता था। वे शिवाजी को पत्रों को तिथिबद्ध किए जाने, संबोधन के व्यवहार, उनके दस्तावेज़ रखे जाने, सूचना एकत्र करने, लेखांकन, इत्यादि के व्यवहार को शुरू करने का श्रेय देते हैं (देशपांडे 2007ः 37)।

लिपिक की भूमिका राजनीतिक और रचनात्मक, दोनों, थी, जिसमें कल्पना और बुद्धि दोनों की आवश्यकता होती है जहाँ एक ओर उसे राजा के मन को पढ़ना होता था और उसके इरादों का पता लगाना होता था, वहीं दूसरी ओर वह राजा के रणनीतिकार तथा प्रतिनिधि के रूप में भूमिका भी निभाता था, शासक को उसके सहयोगियों तथा शत्रुओं के साथ समझौते करने में सहायता हेतु (देशपांडे 2007ः 37-38)। मराठी साक्षर समाज को कई विभिन्न नामों, जैसे *चिटनवीस, वाकानवीस* या *वकील* के नाम से जाना जाता था। विभिन्न ब्राह्मणों और कायस्थों के वर्गों से आने वाला यह पढ़ा-लिखा अधिकारी-वर्ग 18वीं शताब्दी में गतिशील और बहुभाषी कार्य-समूह का प्रतिनिधित्व करता था (देशपांडे 2007ः 38)।

मराठा अधिकारी-तंत्र के हिस्से के रूप में कई *बखर* लेखकों की पहुँच *शाकावली* (शब्दशः. वर्षों का क्रम) या परिवारों और वंशानुगत अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए इतिवृत्तों तक होती थी, जिनमें जन्म, मृत्यु, राजतिलक, राज्यारोहण और विवाह के संबंध में सूचनाएँ दर्ज होती थीं (देशपांडे 2007ः 29)। और अधिकतर ये विवरण राज्य के भीतर उपयुक्त स्रोतों तथा अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों से मशविरा करने की घोषणा के साथ शुरू या समाप्त होते हैं। जहाँ *भाऊसाहेबांची बखर* ने अपने लेखन में प्रत्यक्ष अनुभव की भूमिका पर बल दिया है, वहीं ऐसा माना जाता है कि कृष्णा जी विनायक सोहोनी ने *पेशव्यांची बखर* का वाचन अपनी स्मृति के आधार पर किया था। यद्यपि इसमें दी गई विस्तृत जानकारी से यह संकेत मिलता है कि उन्होंने अवश्य ही पुराने दस्तावेज़ों को देखा होगा। *चिटनिस* उन स्रोतों का विशेष रूप से उल्लेख करता हैं जिनकी उसने सहायता ली थी, जिसमें *विष्णु पुराण* जैसे शास्त्रों तथा राज्य के दस्तावेज़ों, रोज़नामचा, इत्यादि जैसे लेखन भी शामिल हैं। जहाँ ये विवरण यह स्वीकारते हैं कि उन्होंने इन विश्वसनीय स्रोतों का प्रयोग किया है, यह स्वयं इन विवरणों के हिस्सों के रूप में नज़र नहीं आते हैं (देशपांडे 2007ः 31)।

प्रतिलिपि तैयार करने वालों द्वारा इन विवरणों के हस्तांतरण का परिणाम अक्सर उनके शब्द-विधान, मुहावरों और व्याख्या में बदलाव में निकलता था। उदाहरण के लिए, *भाऊसाहेबांची बखर* को उत्तर भारत में किसी मराठी-भाषी द्वारा लिखा गया था, अत्यधिक फ़ारसी-कृत मराठी में। वहीं दक्षिण के कई शहरों, जैसे सांगली व सतारा, में मिलने वाली इसकी प्रतिलिपियों में उर्दू और फ़ारसी के शब्दों और पदबंधों (phrases) का मुक्त रूप से मराठी में अनुवाद किया गया है (देशपांडे 2007ः 32)।

मराठा इतिहासलेखन में 18वीं-19वीं शताब्दी का युग शिवाजी के स्वराज्य के उस समय से काफ़ी भिन्न था, जिसका तात्पर्य मराठा राज्य के उदय से था और जो 17वीं शताब्दी में नर्मदा नदी से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक विस्तृत था। मराठी-भाषी देश और एक सुगठित मराठा पहचान का निर्माण शिवाजी के अधीन और उनके मराठा उत्तराधिकारियों के अधीन 17वीं शताब्दी की उस पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं जिसके आलोक में पानीपत पर लिखे गए ग्रंथ आधारित थे। मुग़ल काल में मराठी भाषी लोग नियमित रूप से तीर्थ यात्रा और व्यापार-संबंधी कारणों से बड़ी संख्या में उत्तर भारत आते रहते थे; और 'हिंदुस्तान' का मराठी ऐतिहासिक चेतना में पहले से ही एक सुस्थापित स्थान था जो पानीपत की लड़ाई से पहले ही विकसित हो चुका था। तथापि, 18वीं शताब्दी में 'हिंदुस्तान' में मराठों के तीव्र आगमन ने मराठा इतिहास में 'हिंदुस्तान' के महत्व को और इसके लेखन को अभूतपूर्व तरीकों से नया रूप प्रदान किया (देशपांडे 2013ः 6)।

पूर्व-औपनिवेशिक काल में *बखर* की रचना एक नई राजनीतिक पहचान को स्थापित करने की आवश्यकता से जुड़ी थी लेकिन साम्राज्यवादी शासन के अधीन इन प्राथमिकताओं में बदलाव आया। औपनिवेशिक काल में यद्यपि *बखरों* को छपाई या शिक्षा की परियोजनाओं के उद्देश्य से नहीं लिखा गया था, तब भी उन्हें राज्य के निर्देश पर लिखा जाना जारी रहा। परस्पर व्याप्त उन्मुक्तियों तथा भूमि के अधिकारों से संबंधित विवादों में नए प्रशासन द्वारा *बखरों* की प्रामाणिकता को स्वीकारा गया था। इस दौरान लिखे गए अधिकांश ग्रंथ वंशावलीय विवरण हैं जो पेशवा, भोंसले, होल्कर, इत्यादि के कौटुम्बिक भाग्य को दर्ज करते हैं। इन मौजूदा शासकों द्वारा अपने अधिकारों तथा प्राप्त उन्मुक्तियों को सुरक्षित करने का प्रयास किया गया था और कईयों ने अपने अतीत के सैन्य अभियानों का उल्लेख किया था ताकि ब्रिटिश प्रशासन के समक्ष अपनी पेंशनों की मांगों को जोरदार तरीके से रखा जा सके (देशपांडे 2007: 89-90)।

बाद में, औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था में पूर्व-औपनिवेशिक मराठी गद्य साहित्य तथा इसकी वर्णनात्मक संरचना को साहित्यिक शैली की स्नातक स्तरीय परीक्षाओं में जगह मिली। यह ध्यान में रखना बड़ा दिलचस्प होगा कि 1870 के दशक में जब ग्रैंट डफ़ की पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ़ द मरहट्टास* को अतीत के प्रमाणिक वृत्तांत के रूप में स्वीकारा गया। इसमें *बखरों*, को मराठी साहित्य से संबंधित बताया गया था। इसने ब्रिटिश सत्ता के लिए, *बखर* इतिहासलेखन में प्रस्तुत शुरुआती निरुपणों और इस क्षेत्र की राजनीतिक-अर्थव्यवस्था में उनके द्वारा लाए गए परिवर्तनों दोनों से ही स्वयं को दूर दिखाना आसान बना दिया था (देशपांडे 2007: 92-93)।

19वीं शताब्दी में जब उपनिवेश-विरोधी भावनाएँ गति पकड़ रही थीं, ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध एक राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया सूत्रबद्ध हो रही थी जिसमें राजवाडे और चिपलुंकर जैसे विद्वानों ने विभिन्न प्रकार के दस्तावेज़ों, जैसे चिट्ठियों, प्रबंध-ग्रंथों, *बखरों*, को मराठी लेखकों के लिए एक संग्रहालय का निर्माण करने हेतु संकलित किया। जस्टिस रानाडे, जो 1870 के दशक में बम्बई में सामाजिक सुधारों के प्रवक्ता थे, और साथ ही सावरकर ने *बखर* में अंतर्निहित देशज ऐतिहासिक लेखन की परम्परा को पहचाना और उसे प्रोत्साहित किया। शिवाजी के वंश की विरासत को क्षेत्रीय देशभक्ति और हिंदू राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने के लिए अपनाया गया। जहाँ *बखर* किसी भी प्रकार के सांप्रदायिक आख्यान को गढ़ने के लिए अस्पष्ट स्वरूप के थे, 'सावरकर ने *बखरों* के जीवंत कथा-वाचन, वीरतापूर्ण इतिहास निर्माण तथा अतीत के प्रतिरूपण के मिश्रण को वि-राजनीतिक औपनिवेशिक इतिहास के लिए प्रति-आख्यान के रूप में प्रयोग किया' (विसना 2020: 8-9)। इसी प्रकार बाल गंगाधर तिलक ने मराठों की बढ़ती हुई लोकप्रियता तथा विकसित होती ऐतिहासिक स्मृति का उपयोग मध्यम वर्ग के बीच उपनिवेश-विरोधी आंदोलन के हिस्से के रूप में गणपति (1893) और शिवाजी (1897) उत्सव की शुरुआत करने में किया (देशपांडे 2007: 126.138)।

11.3.4 आलोचना और महत्व

दो सौ से कुछ अधिक *बखर* समय की प्रतिकूल मार से बचे रह गए हैं और उनमें से अधिकांश का मराठा इतिहास के आधुनिक विद्वानों द्वारा 19वीं शताब्दी में संपादन और मुद्रण किया गया। '19वीं और 20वीं शताब्दियों में *बखरों* का यह प्रस्तुतीकरण और पुनःप्रस्तुतीकरण इनके आधुनिक संपादकों की विचारधारा के झुकाव से कभी भी मुक्त नहीं था'। इस प्रकार *बखरों* का कोई भी पाठ उनके आधुनिक संपादकों तथा मूलभूत संकलन-कर्ताओं के अध्ययन को आवश्यक बनाता है ताकि उनकी ऐतिहासिक पुनर्निर्माण की संभावनाओं की ओर ध्यान दिया जा सके (देशपांडे 2013: 5)।

प्रख्यात इतिहासकार वी. के. राजवाडे ने *बखरों* के विवरण की उनकी 'अतिशयोक्तियों, अनैतिहासिकता, कालक्रम के भ्रम और कल्पनापूर्ण कथाओं के प्रति प्रेम के कारण आलोचना की है' (गुहा 2004[क]: 1102)। अधिकांश *बखर* विशेष शासकों और स्वायत्त सरदारों के प्रति निष्ठापूर्ण जुड़ाव का प्रदर्शन करते हैं। औपनिवेशिक काल में इतिहासकारों ने *बखरों* के पक्षपातपूर्ण झुकाव को एक कमी के रूप में देखा, जिन वृत्तांतों में तारीख़ों और कालक्रम के प्रति उपेक्षा भी थी (देशपांडे 2007: 20)। *सभासद बखर* मराठा राज्य की स्थापना के संबंध में उपलब्ध सबसे पुराना विवरण है, यह इसकी शक्ति को एक 'नवीन, श्रद्धा और प्रशंसा के योग्य' के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका बल शिवाजी के नेतृत्व में शुरू हुई केंद्रीकरण की प्रवृत्ति की वैधता पर है, राजत्व के प्रतिस्पर्धी दावों का प्रतिवाद

करने के लिए। *पेशव्यांची बखर* में, पुणे में विराजमान पेशवा के 'ब्राह्मण राज' के वर्णन के माध्यम से सद्-आचरण और धर्म के प्रति लगाव की प्रशंसा की गई है (देशपांडे 2007: 41-43)।

लिंगबोध, वर्ग और जाति के प्रश्न भी *बखरों* की संरचना में उजागर नहीं होते हैं, क्योंकि उनका मुख्य ध्यान उस क्षेत्र की राजव्यवस्था पर ही था। यद्यपि इन विवरणों में वस्तुनिष्ठता को ख़ोज पाना मुश्किल है तथापि वे दिन-प्रतिदिन के जीवन की झलक प्रस्तुत करते हैं। ऐतिहासिक स्मृति का यह नवीनीकरण विवादों और नीतियों का समाधान करते हुए एक सार्वजनिक गतिविधि के रूप में घटित हुआ था। इन सार्वजनिक स्थानों में से एक थी क़ानूनी कचहरियाँ, एक प्रकार का मंच जहाँ बहुत पहले से ही लोगों को विवाद-ग्रस्त अतीत के विश्वसनीय विवरण प्रस्तुत करने का लाभ प्राप्त था। 1610 के समय का एक प्रकरण यह संकेत करता है कि *बखर* शब्द का प्रयोग विभिन्न कार्यवाहियों में साधारण रूप से तथ्यात्मक अभिकथन के लिए प्रयुक्त हुआ है (इस प्रकरण में सीमा निर्धारण के लिए) (गुहा 2019: 84)। यह स्थानीय सभा, जो पुणे जिले के दो गाँवों के बीच सीमा-संबंधी विवाद को लेकर 1610 में एकत्र हुई थी, इस तरह का उदाहरण है। इस्लामी विद्वान और अधिकारी, ब्राह्मण नौकरशाह, व्यापारी, विभिन्न धर्मों से संबंध रखने वाले स्थानीय भद्र-जन तथा संभ्रांत किसान, सभी, इस मुद्दे को सुलझाने के लिए उपस्थित थे। इसमें से अधिकांश कार्यवाही खुले सार्वजनिक स्थानों पर होती थी। विभिन्न वर्गों के लोग इस प्रकार समय-समय पर सुनवाई करने, चर्चा करने और स्थानीय ज्ञान और सहज बुद्धि को नया रूप प्रदान करने एकत्र होते थे। इनमें से कुछ गवाहों, वादियों या प्रतिवादियों के रूप शामिल हुए। मोटे तौर पर एक अशिक्षित समाज में इस तरह की गोष्ठियाँ/सभाएँ क्षेत्रीय और स्थानीय इतिहास को आकार देने तथा उनको हस्तांतरित करने में महत्वपूर्ण थीं।

बखर लेखन की यह ऐतिहासिक-लेखन परम्परा विभिन्न प्रकार के ग्रंथों/दस्तावेज़ों पर आधारित थी, जैसे पुराने *बखर*, प्रशासनिक दस्तावेज़, सार्वजनिक साक्ष्य, पौराणिक ज्ञान, *पोवाड़ा* की लोकप्रिय स्मारक संबंधी परम्पराएँ, जिससे पता चलता है कि इस रीति से अंतर-पाठात्मकता का सृजन हुआ था (देशपांडे 2007: 66)। *बखर* अतीत के संबंध में बहुत से दृष्टिकोणें के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, भले ही इनमें से कुछ विवरण केंद्रीयकृत तथा आदर्श राजनीतिक सत्ता के विचार पर टिके हुए थे, इनको सत्ता के विभिन्न केंद्रों पर व्यवस्थित रूप दिया गया था। इसके विपरीत औपनिवेशिक काल में मराठा इतिहास की व्याख्या का उद्देश्य अतीत का एक सत्य से पूर्ण और एकात्मक आख्यान प्रस्तुत करना था और चूँकि साहित्य को इतिहास से एक भिन्न विषय के तौर पर देखा गया था, ऐतिहासिक और कल्पनात्मक आख्यानों के बीच सीमाएँ धुंधली बनी रहीं (देशपांडे 2007: 204-6)।

कई *बखर* स्वयं को अपने से वरिष्ठ प्राधिकार रखने वाले को अन्य बुद्धिमान कनिष्ठ द्वारा दिए गए उत्तर के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह भाषागत शैली लेखन की इस संकर (hybrid) विधा की उत्पत्ति का एक अन्य साक्ष्य प्रस्तुत करता है: ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति एक उत्तरोत्तर अधिकारी-तंत्र में बदलते शासन से हुई थी, बाद के शासकों को अपने क्षेत्र को जानने की आवश्यकता थी और उन्होंने स्थानीय अधिकारियों से इस संबंध में साक्ष्य जुटाये। इस प्रकार की जिज्ञासा वहाँ सामान्यतः पाई जाती होगी जहाँ राजसत्ता ने शक्तिशाली मध्यस्थ सामंतों को कमज़ोर बना दिया था और वह स्थानीय क्षेत्र तक प्रवेश कर गई थी।

बोध प्रश्न-1

1) *बखर* की सामाजिक तथा भाषायी उत्पत्ति के बीच अंतर कीजिए।

....

....

....

2) *बखर* किस प्रकार अतीत को समझने में सहायक होते हैं? उदाहरणों के साथ व्याख्या कीजिए।

....

....

....

3) जिन्होंने *बखर* को लिखवाया तथा जिन्होंने इनकी रचनाएँ कीं, उनके लिए क्या तत्व प्रेरक रहे थे?

....

....

....

11.4 *बुरँजी* क्या है?

भारत में कालानुक्रमिक रूप से अतीत की घटनाओं का विवरण रखने की परंपरा दो प्रांतों – कश्मीर और असम – में पाई जाती है। जहाँ 12वीं शताब्दी में कल्हण द्वारा संस्कृत में रचित *राजतरंगिणी* प्राचीनतम समय से कश्मीर की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करती है, वहीं *बुरँजियाँ* असम के ऐतिहासिक अतीत के निर्माण हेतु प्रयुक्त हुई हैं (डेका 2016)। *बुरँजियाँ* 1228 से 1826 तक असम में शासन करने वाले अहोम राजवंश के ऐतिहासिक इतिवृत्तों की एक शैली है और असम के पूर्व-औपनिवेशिक इतिहास की समझ मुख्यतः इन *बुरँजियों* पर ही आधारित है, जिन्हें शुरुआती रूप से ताइ-अहोम भाषा में लिखा गया था लेकिन बाद में इनमें से अधिकांश की रचना असमी भाषा में हुई है, अनुमानतः अहोमों के हिंदू धर्म में धर्मांतरण के बाद। *बुरँजी* शब्द, जिसे आज इतिहास का पर्यायवाची माना जाता है, असमी भाषा में 'इतिहास' शब्द का प्रयोग 'प्राचीन' के लिए थाई शब्द *बोरान* से आया है (हार्टमन 1997)। इसकी एक अन्य अर्थ में व्याख्या की गई है – '(ज्ञान का) ऐसा भंडार जो अज्ञानी को सिखाता है', अर्थात *बु* (अज्ञानी व्यक्ति), *रँ* (सिखाना), *जी* (अन्नागार या भंडार) (गैट 1905)। *बुरँजियों* की प्रकृति का अन्य दिलचस्प वर्णन जॉन पीटर वेड (1800) द्वारा असम के इतिहास के संकलन में मिलता है जो एक राजकीय आदेश का संदर्भ देता है कि 'राजा के पूर्वजों के इतिहास को लिखा जाना चाहिए, अहोम राजाओं के उत्तराधिकारियों के क्रम को विस्तार से दर्ज किया जाना चाहिए और इस दस्तावेज़ को *रूपूट* कहा जाना चाहिए; यह कि इतिहास में केवल ***स्वर्गदेवों*** अथवा अहोम राजाओं के नामों और कृत्यों का उल्लेख होना चाहिए' (पुरकायस्थ 2008)।

सत्ताधारी राजाओं और राज्य के उच्चाधिकारियों के राजकीय आदेशों पर लिखे तथा संकलित किए गए इन इतिवृत्तों की शैली न केवल हमें अहोमों के वंशानुगत इतिहास की जानकारी देती है बल्कि हमें असम में इतिहास लेखन की एक विशिष्ट शैली के विषय में भी बताती है जो पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया की ऐतिहासिक परंपराओं के समरूप हैं। इस प्रकार *बुरँजी* की विशिष्ट विशेषता अहोमों के राजदरबार के भीतर और बाहर घटित महत्वपूर्ण घटनाओं के विवरण को दर्ज करना है, यही कारण है कि *बुरँजी* इतिहास के बजाय राजाओं का इतिवृत्त अधिक नज़र आती है।

11.5 *बुरँजियों* का चयन, संग्रह और प्रस्तुति

बुरँजी केवल एक ही नहीं है बल्कि विभिन्न शासन करने वाले अहोम राजाओं के समय में कई *बुरँजियों* को लिखा गया और इनमें से कुछ सरकारी तथा कुछ निजी हैं। इनके लेखन की शैली विशिष्ट थी और इनमें से कुछ विशेष सांस्कृतिक बारीकियों को धारण करती हैं जिससे अहोम लोगों के विभिन्न सांस्कृतिक समूहों के साथ हुए ऐतिहासिक आदान-प्रदान का पता चलता है। पुरानी *बुरँजियों* में पुरानी ताइ-अहोम भाषा का उपयोग किया गया है जो प्रारंभिक 19वीं शताब्दी तक लगभग मृतप्रायः हो गई थी और असमी भाषा ने इसका स्थान ले लिया और उसका उपयोग केवल कुछ बुजुर्ग देउ (पुरोहितों) द्वारा समारोह और अनुष्ठानों के उद्देश्यों के लिए किया जाता था। यह कुछ बुजुर्ग देउ ही थे जिनसे कुछ प्रमुख सामाजिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों, जैसे बहर गोलप चंद्र बरुआ, ने ताइ-अहोम भाषा की शिक्षा पाई थी, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने *बुरँजियों* को चयनित, व्यवस्थित और प्रस्तुत करने का काम सौंपा था (गैट 1933)। इस प्रकार *बुरँजियों* का प्रमुख संग्रहण ब्रिटिश आगमन के बाद हुआ, यहाँ की भूमि और लोगों के बारे में समझने के लिए क्योंकि असम की ऐतिहासिक और सामाजिक परंपराओं के बारे में उनका कोई पूर्व-ज्ञान नहीं था। ज़ाहिर है जिन लोगों को *बुरँजियों* के संग्रह और अनुवाद के काम में लगाया गया था और इसकी ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी, ये वे लोग थे जो ब्रिटिश भारत की आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में शिक्षित हुए थे और इसके दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक शोध की विधि से अत्यंत प्रभावित थे। इसके बाद से हम कह सकते हैं कि *बुरँजी* अहोम साम्राज्य की क्षेत्रीय

भाषा तक सीमित नहीं रह गई थी बल्कि उसे ऐतिहासिक प्रक्रिया के व्यापक संदर्भ में पुनः व्याख्यायित किया जा रहा था। विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है डॉ. सूर्य कुमार भुयान द्वारा दिया गया योगदान, जिन्होंने असम के इतिहास के पुनःनिर्माण में सहायता करने हेतु कई महत्वपूर्ण *बुरँजियों* का चयन कर उन्हें व्यवस्थित और संपादित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया, महत्वपूर्ण है। अन्य शख़्यित जिन्होंने ***पुथी*** (पांडुलिपियों) का पता लगाने, उनकी पहचान और उनका चयन करते हुए उन्हें व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, वह हेमचंद्र गोस्वामी थे, जिन्हें 1914 में असम के मुख्य आयुक्त श्री आडेल के नायब के रूप में, विभिन्न भागों में बिखरी हुई पांडुलिपियों को संग्रहित करने के लिए, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अहोम शासन के प्रभाव में रची गई थीं, नियुक्त किया गया था। पांडुलिपियों का यह संग्रह विशिष्ट जानकारियों से युक्त था क्योंकि भारतीय परम्परा की अन्य पांडुलिपियों के साथ-साथ यह विभिन्न विषयों और प्रसंगों पर दस्तावेज़ों को सामने लाया, जैसे वानस्पतिक विज्ञान जिसमें औषधीय पौधों का आर्थिक वर्णन भी शामिल था, इत्यादि (गोस्वामी 1930)। यह केवल ब्रिटिश आगमन के बाद ही संभव हुआ कि *बुरँजी* में मौजूद जानकारियाँ आम जनता के सामने आईं, उन महानुभावों के संकलन और संग्रहण के प्रयासों से जिन्होंने ऐतिहासिक अनुसंधान की आधुनिक प्रविधि में प्रशिक्षण हासिल किया था।

11.6 उत्पत्ति

अहोम, शान नृजातीय समूह की एक शाखा हैं जिन्हें ताई या थाई भी कहा जाता है और यह मूल रूप से दक्षिण-पूर्व एशिया से संबंध रखते हैं, वे 1228 में असम पहुँचे थे। एक नवीन वैज्ञानिक खोज द्वारा यह पुष्टि की गई है कि असम के ताई-अहोम थाई लोगों के साथ सामान्य जीन आधारित गुणों को साझा करते हैं[1]। *बुरँजियों* पर आधारित असम का इतिहासलेखन यह दर्शाता है कि शान पहले चीन की ओर प्रवासित हुए और बाद में यून्नान के मुंगरीमुंगराम को उन्होंने अपना वतन बनाया जो बाद में एक केंद्रीय राज्य पर निर्भर कई छोटे राज्यों वाले एक देश के रूप में विस्तारित होता गया (ने एलियास 1876)। अहोम मुंगरीमुंगराम को अपने मूल देश के रूप में पहचानते हैं जहाँ उनका कनिष्ठ पूर्वज, खुनलाई शासन करता था।

अहोम राज्य के संस्थापक, सुकफा, का जन्म ऊपरी बर्मा के माऊलुंग में हुआ था, जो मुंगरीमुंगराम का एक हिस्सा था। 1215 के आसपास सुकफा ने अपने भाई के साथ एक विवाद के कारण अपना घर छोड़ दिया और अपनी क़िस्मत आजमाने के लिए पटकाई पर्वत श्रृंखला की ओर निकल गया। रास्ते में उसने बहुत सी स्थानीय जनजातियों, जैसे नौक्ते, वांचू, तंगसा नागा और अन्य, पर विजय तथा आधिपत्य क़ायम किया जिन्होंने एक दशक से भी अधिक समय तक प्रतिरोध करने के बाद अंततः उसकी सत्ता को स्वीकार कर लिया था। सुकफा 1228 में ब्रह्मपुत्र घाटी पहुँचा, बहुत सी पिछड़ी जनजातियों को शांत करने तथा अपने अधीन बनाने के बाद और अंततः वर्तमान असम के शिबसागर में चराईदेव में अपनी राजधानी स्थापित करने के बाद वहाँ बस गया। यह सुकफा ही था जो *बुरँजी* की परम्परा को अपने साथ लेकर आया, जब उसने अपने अनुयायियों को ब्रह्मपुत्र घाटी की यात्रा के दौरान घटित हुई घटनाओं को लेखबद्ध करने का निर्देश दिया और इस परम्परा को उसके उत्तराधिकारियों द्वारा 1826 में यंडाबू संधि[2] के परिणामस्वरूप उनके शासन के अंत होने तक जारी रखा गया।

सुकफा ने 1268 तक शासन किया और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र सुतेउफा बना जिसने शिबसागर के पश्चिम में नामडांग नदी तक अहोम साम्राज्य का विस्तार किया जो आगामी 200 सालों तक इस राज्य की सीमा बनी रही। नामडांग नदी को सीमा के रूप में स्थापित करने का एक कारण स्थापित राजवंशों, जैसे चुटिया, कचारी, और भुयान, इत्यादि से प्रत्यक्ष सामना करने से बचना हो सकता था (बरुआ 1986)। ये राजनीतिक इकाइयाँ 16वीं शताब्दी तक प्रभावी नियंत्रण में आ चुकी थीं, जिसने असम में अहोमों को सर्वोच्च सत्ताधारी वंश का स्थान दिया लेकिन उनकी विस्तारवादी नीति पर पश्चिम में कूचों द्वारा लगाम लगाई गई और बाद की शताब्दियों में वे मुग़ल थे जो उनके सबसे बड़े प्रतिद्वंद्वी के रूप में उभरे (गोस्वामी 2012)। अहोम या ताई शानों का आगमन पूर्वोत्तर भारत के इतिहास में एक नई प्रवृत्ति की शुरुआत थी जिसने एक ग़ैर-आर्य शासन को संगठित करते हुए

[1] https://www.telegraphindia.com/north-east/dna-samples-throw-light-on-thai-ahom-link/cid/1447621

[2] ब्रिटिश सेना द्वारा बर्मी सेना को हराने में अहोमों की मदद के बाद यंडाबू संधि पर अहोमों तथा ब्रिटिशों ने 1826 में बर्मी राजा के साथ हस्ताक्षर किए थे। यह असम की राजनीति में ब्रिटिश सत्ता के पदार्पण को सूचक है।

अंततः एक विशिष्ट क्षेत्रीय राजव्यवस्था और पहचान का आधार निर्मित किया (बरुआ 1986)।

यद्यपि अधिकांश उपलब्ध पांडुलिपियाँ 17वीं व 18वीं शताब्दी में तिथिबद्ध की जा सकती हैं, इनमें कई पुराने ग्रंथों की नक़ल और साथ ही उनकी चर्चा भी की गई है, जिससे यह भी पुष्टि होती है कि *बुरँजियों* का अहोम शासकों की आने वाली पीढ़ियों के निर्देशों पर सावधानीपूर्वक नवीनीकरण किया जाता रहा, जिन्होंने 15वीं शताब्दी से *स्वर्गदेव* (देवता समान राजा) की उपाधि ग्रहण कर ली थी। *देउधाई* (पुरोहित), *काकती* (कूटनीतिज्ञ) और प्रमुख कुलीन व्यक्तियों और उनके परिवार अपनी ऐतिहासिक परम्परा की निरंतरता को बनाए रखने के लिए अतीत की सभी प्रमुख घटनाओं को विश्वसनीय ढंग से प्रतिलिपित, संशोधित और लेखबद्ध करते थे। मूल रूप से *बुरँजियों* को *गोंधिया भोराल* नाम से जाने जाने वाले भंडार-गृह में रखा जाता था और राजदरबार के अधिकारी जिसे *गोंधिया फूकान* कहा जाता था तथा पांडुलिपि/इतिहासलेखन विभाग, जिसका प्रमुख *बोरगोहेन* नाम का उच्च राज-अधिकारी होता था, के निरीक्षण में रखा जाता था। अहोम, *बुरँजी* को पवित्र तथा प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का स्रोत मानते थे, और राजकुमारों व राजदरबार के कुलीनों की संतानों के लिए इस ज्ञान सृजन के क्षेत्र में प्रवीण होना अनिवार्य था। *बुरँजियों* के ज्ञान में पारंगत होना सत्ता तथा वैधता से जुड़ा था और इसलिए कई कुलीन परिवार अधिकारिता तथा आत्मोन्नति के स्रोत के रूप में स्वयं *बुरँजियों* को रचने और उनको अपने पास रखने पर ध्यान देते थे। इन लेखों की मान्यता इतनी महत्व की थी कि *बुरँजी* के अंशों को कुछ अवसरों पर सार्वजनिक रूप से पढ़ा जाता था और शाही विवाह के कार्यक्रम में भी इनका वाचन किया जाता था। इस प्रकार की रीतियों से अहोमों ने अपने पूर्वजों को सम्मान देना और याद रखना जारी रखा था (डेका 2016)।

11.7 कुछ *बुरँजियाँ*

गद्य और पद्य में लिखी गई *बुरँजियाँ* 'संख्या में अधिक और आकार में विस्तृत' हैं और पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व एशिया में ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के संकलन की यह परम्परा अन्य सांस्कृतिक परंपराओं के साथ अहोमों द्वारा लाई गई जब वे असम के क्षेत्र में आव्रजित हुए, इसने देश के इस भाग में ऐतिहासिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है (डेका 2016)। ताई-अहोमों की पुरानी लेखन प्रणाली पूर्ण रूप से विकसित नहीं थी अतः आधुनिक समय के इतिहासकारों के लिए इन्हें पढ़ पाना एक दुष्कर कार्य है (हार्टमन 1997)। जहाँ असम के इतिहासकारों ने पूर्व-औपनिवेशिक असम के इतिहास की चर्चा करते हुए, विशेष रुप से अहोम शासन के शुरुआती भाग की, कई अनाम लेखकों द्वारा लिखित *बुरँजियों* का संदर्भ दिया है, इनके श्रेणीकरण की पद्धति को लेकर किसी भी तरह की स्पष्टता नहीं रही है। तथापि, *बुरँजियों* को दो प्रकार की श्रेणियों में रखा जा सकता हैः 1) सरकारी इतिवृत्त जो राज्य/अहोम साम्राज्य के साथ संबंध रखते हैं और अहोमों के अधीन राजनीतिक व्यवस्था को समझने में सहायता करते हैं; और 2) पारिवारिक/विद्वानों की *बुरँजियाँ* जो अहोमों के सामाजिक सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालती हैं।

सरकारी *बुरँजियों* में प्रमुख राजनीतिक घटनाओं से संबंधित सामग्री और चर्चाओं को शामिल किया गया है, सटीक तिथियों और स्थानों के नामों, युद्धों के वर्णनों और रणनीतियों, संधियों, कूटनीतिक दूतों द्वारा लिखे गए पत्रों, गुप्तचरों के प्रतिवेदनों और ऐसे ही अन्य दस्तावेज़ों के साथ जो अहोम राज्य-तंत्र के संबंध में जानकारी का बहुमूल्य स्रोत हैं। कुछ अन्य प्रकार के लेखन अहोमों के सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर रोशनी डालते हैं, जैसे दरबारी कुलीनों की पारिवारिक वंशावली, पुरोहित वर्गों और राज परिवार के सदस्यों की जानकारी, जिसमें महारानियों की जीवनशैली की जानकारी भी शामिल है। अक्सर, इतिवृत्तकारों ने स्वयं घटनाओं को देखा होता था, यद्यपि *बुरँजी* में लेखकों का नाम विरले ही मिलता है, केवल अहोम शासन के अंत में जाकर ही *बुरँजियों* में उनके लेखक का नाम देखने को मिलता है (सैकिया 2008)। काशीनाथ तामुली फुकान द्वारा रचित *अहोम बुरँजी* के रूप में प्रकाशित होने वाला पहला इतिवृत्त 1844 में अमेरिकी बैपटिस्ट मिशन की शिबसागर शाखा द्वारा प्रकाशित था। इस इतिवृत्त का विस्तृत संस्करण सदारामिन हरकांत बरुआ (1818-1900) द्वारा लिखा गया जो अहोम शासन के अंतिम चरण और असम में ब्रिटिश शासन के सुस्थापित होने का साक्षी रहा था। इसे बाद में व्यापक पाठक वर्ग के लाभार्थ मूल स्वरूप में बिना अधिक परिवर्तन किए एस. के. भुयान द्वारा संपादित किया गया और असम के इतिहास तथा प्राचीन अध्ययन विभाग द्वारा प्रकाशित करवाया

गया। *असम बुरँजी* के इस विस्तृत संस्करण में अहोम शासन की शुरुआत से लेकर 1826 में असम में ब्रिटिश कब्ज़े तक के काल को समाहित किया गया है। काशीनाथ तामुली की प्रारंभिक *असम बुरँजी* अहोम राजा *स्वर्गदेव* पुरंदर सिंह तथा उनके अधिकारी राधानाथ बरबरुआ के निर्देशों तथा निरीक्षण के अधीन लिखी गई थी।

सुकाफा के समय से ही इंद्र के इन वंशजों (अहोम शासक स्वयं को *इंद्रवंशी* कहते थे) पर *बुरँजियों* के कई रूपांतर लिखे गए थे, कभी-कभी यह एक-दूसरे से विरोध रखते थे जो पाठकों के लिए भ्रम पैदा करने वाला था। इस प्रकार के ऐतिहासिक अंतर्विरोध को दूर करने के लिए *स्वर्गदेव* पुरंदर सिंह ने सभी *बुरँजियों* को विभिन्न प्रांतों से एकत्र करवाया और अहोम (असम) की एक संक्षिप्त *बुरँजी* की रचना करवाई। लेकिन *बुरँजी* के इस संस्करण की हरकांत बरुआ द्वारा अहोम इतिहास के कई महत्वपूर्ण पहलुओं को छोड़ देने और केवल विभिन्न अहोम राजाओं के शासन में होने वाली घटनाओं का वर्णन करने के लिए आलोचना की गई (बरुआ 1930)। इस प्रकार इस *बुरँजी* का हरकांत बरुआ द्वारा किए गए संशोधन में लोगों से एकत्र कई लोकप्रिय आख्यान और कथाएँ भी शामिल थीं। इस संशोधित *बुरँजी* से ही हुतात्मा राजकुमारी सती जयमती की प्रख्यात कथा का तर्कपूर्ण रूप सामने आया और उसी प्रकार चाउडांग (Chaudang) यानी वंशानुगत वधिकों के विषय में भी जानकारी मिली। हरकांत की *बुरँजी* में वर्णित चाउडांगों के जीवन तथा कृत्यों से अहोम शासन के दौरान राजा के आदेशों का उल्लंघन करने वालों को दिए जाने वाले दंड की प्रकृति के विषय में पता चलता है। यातना तथा वध करना चाउडांगों के दिन-प्रतिदिन के कार्य का हिस्सा था जो कई बार अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अहोम विधियों की सीमा से भी पार चले जाते थे। हरकांत की *बुरँजी* के अनुसार, जयमती की मृत्यु चाउडांग द्वारा उन्हें दी गई यातनाओं के कारण हुई थी। अहोम शासन की भलाई के लिए अपने पति की रक्षा हेतु जयमती द्वारा दिए गए बलिदान को स्थानीय ऐतिहासिक आख्यानों को ज़िंदा रखते हुए असम की लोकप्रिय संस्कृति के तत्वों जैसे कविताओं, लघु कथाओं, नाटकों, फिल्मों, आदि में कई रूपों में प्रस्तुत किया जाता रहा है।

विद्वानों द्वारा अधिकतर उपयोग में लाई गई कुछ *बुरँजियों* की यहाँ चर्चा की जा रही है:

11.7.1 *देउधाइ बुरँजी*

देउधाइ (पुरोहित) *बुरँजी* को अहोमों की प्राचीनतम लिखित पांडुलिपि माना जाता है, जिसमें मुख्यतः सृष्टि संबंधी मिथकों और कथाओं का वर्णन है। *देउधाइ* द्वारा वर्णित अहोमों की उत्पत्ति की कथा ऊपरी बर्मा के शान लोगों द्वारा संरक्षित कथा से अत्यंत समानता रखती है। इसका अन्य रूपांतर ब्राह्मणों द्वारा किए गए सशोधनों के साथ है जो उस प्रक्रिया को समझने के लिए महत्वपूर्ण है जिससे अहोम समाज हिंदू प्रभाव के परिणामस्वरूप गुज़र रहा था। *देउधाइ* कथा के मुताबिक, लैंगडन (सर्वशक्तिमान) ने अपने पुत्र थेंगखाम को धरती पर उतरने और वहाँ एक राज्य स्थापित करने को कहा, किंतु थेंगखाम स्वर्ग को त्यागने को तैयार नहीं था और उसने अपने दो पुत्रों खुनलुंग (ज्येष्ठ राजकुमार) तथा खुनलाई (कनिष्ठ राजकुमार) को अपने अनुचरों के साथ एक लौह या स्वर्ण जंजीर के माध्यम से धरती पर भेजने की व्यवस्था की, और इस प्रकार मुंगरीमुंगराम[3] (अनिवासित देश) की स्थापना की। लैंगडन ने उन्हें 'सोमदेव कही जाने वाली एक मूर्ति, एक जादुई तलवार जिसे हेंगडान कहा जाता है, दैवीय सहायता का आह्वान करने वाले दो ढोल तथा शकुन संकेत बताने वाले चार मुर्गे भी सौंपे'। सोमदेव की मूर्ति को सुकाफा अपने साथ लाया जब वह अपने 1080 अनुयायियों (ये उल्लेख नहीं है कि उनमें कौन थे, स्त्री, पुरुष या बच्चे), नर और मादा हाथी के एक जोड़े, 300 घोड़ों, *बुरगोहेन* तथा *बोरगोहेन* (कुलीनों) के साथ घर से निकला था (बरुआ 1930)। सोमदेव की यह मूर्ति बाद के अहोम शासक *स्वर्गदेव* पुरंदर सिंह के पास थी जब 1819 में उसने बंगाल में शरण ली। इस कथा के संशोधित रूपांतर में, जिसे ब्राह्मणीय प्रभाव में गढ़ा गया था, लैंगडन इंद्र बन जाता है तथा अहोमों को *इंद्रवंशी* के रूप में प्रस्तुत किया गया गया है। बाद के वर्णन की शैली हिंदू परम्परा की तरह ही है, जिसमें *देउधाइ* अपने मुख्य देवताओं की पहचान हिंदू देवता से करते हैं (गैट 1905)।

देउधाइ असम बुरँजी का संपादन एस. के. भुयान द्वारा किया गया था जो अनाम लेखकों द्वारा रचे गए चार लघु इतिवृत्तांतों का संकलन है। यह अहोम वंश की उत्पत्ति के वर्णन से शुरू होती है और

[3] मुंगरीमुंगराम की पहचान वर्तमान में दक्षिणी चीन के युन्नान प्रांत में की गई है।

प्रथम राजा सुकाफा से नारिया *राजा* (राजा सुतयिंगफा के काल; 1644-48) तक का वर्णन करती है जिसे अपनी बीमारी के कारण 'केकोरा' (वक्र) राजा भी कहा जाता था। इसके साथ ही *देउधाइ असम बुरँजी* शासक वंशों के रूप में अहोमों की शुरुआती ऐतिहासिक यात्रा की चर्चा करती है और कारण भी बताती है कि अहोम शासन का संस्थापक सुकाफा क्यों स्वयं को एक सफल शासक के रूप में स्थापित होने में सफल हुआ, अपनी दूर दृष्टि और राज्यकौशल के कारण, जिसने उसे असम की अपनी यात्रा के दौरान कई जनजातीय संघों पर विजय पाने में समर्थ बनाया। *देउधाइ बुरँजी* से ही अहोमों

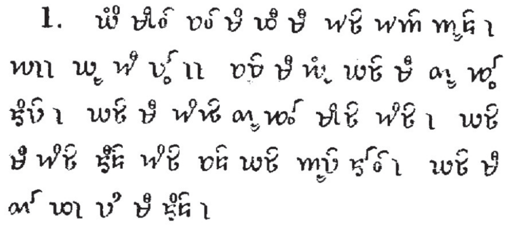

THE CREATION.

1. In the beginning there were no gods and men. The world was void and was surrounded by the water of the ocean. There were no air, no animals, no land, no rulers, no countries and no living beings. Also the sun, the moon and the stars did not exist. There was neither the earth nor the heaven.

के प्रमुख पड़ोसी जनजातियों के साथ संबंधों को समझा जा सकता है।

ताइ-अहोम भाषा (बाएँ) तथा जी. सी. बरुआ का अंग्रेज़ी अनुवाद
यह *देउधाइ बुरँजी* के उत्पत्ति-संबंधी मिथक वाले खंड का हिस्सा है
स्रोतः जी. सी. बरुआ, (1930) *अहोम बुरँजीः फ्रॉम द अर्लीएस्ट टाइम टू द एन्ड ऑफ द अहोम रूल* (कलकत्ताः बैपटिस्ट मिशन प्रैस)

11.7.2 *कामरूपोर बुरँजी*

सूर्य कुमार भुयान ने *कामरूपोर बुरँजी* को पुरानी *बुरँजी* पांडुलिपियों से सम्पादित तथा संकलित किया था। यह प्राचीन असम, जिसे कामरूप कहा जाता था, का ऐतिहासिक वृत्तांत है और इसमें असम तथा कूचबिहार का मुग़लों के साथ संघर्ष भी शामिल है। इन पांडुलिपियों को कामरूप अनुसंधान समिति तथा गुवाहाटी के अमेरिकी बैप्टिस्ट मिशन से संग्रहित किया गया था। अमेरिकी बैप्टिस्ट मिशन के संग्रह में शामिल पांडुलिपियों का पहली बार प्रकाशन 1853 में पहली असमी पत्रिका *ओरुंदोई* में हुआ था। इस प्रकार, यह संग्रह, जिसमें ग्यारह अध्याय शामिल हैं, ऊपरी असम में सादिया से लेकर ब्रह्मपुत्र की घाटी तक विस्तृत क्षेत्र का वर्णन करती है और उन ऐतिहासिक विकासक्रमों को समाहित करती है जो प्राचीन काल से संबंध रखते हैं, जिसे हिंदू कामरूप के रूप में उल्लिखित किया गया है, इसमें पूर्व-मध्यकाल में कामरूप के क्षेत्र में अहोमों के शासनकाल में विदेशी/बाहरी (मुसलमानों) के आगमन की सूचना से लेकर ब्रिटिश आगमन की जानकारी मिलती है। इस *बुरँजी* के बड़े हिस्से को मुग़ल-अहोम युद्ध के ठीक बाद लिखा गया था जैसा कि अहोम राजदूतों द्वारा प्रयुक्त बाहरी प्रभावों से मिश्रित शब्दावली से समझा जा सकता है। लेकिन अठारहवीं शताब्दी के आख़िरी हिस्से और उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में लिखी गई *बुरँजियाँ* विशुद्ध असमी में हैं, जिनमें बाहरी प्रभाव देखने को नहीं मिलता है। बहरहाल, ये नए शब्दों के उभरने तथा उनके उपयोग के बारे में भी जानकारी देती हैं, विशेषकर इस क्षेत्र का संकेत करने के लिए असम, असाम, असोम, अखोम, इत्यादि शब्दावलियों का उपयोग (भुयान 1930)।

कामरूपोर बुरँजी का पहला भाग प्राचीन असम के विभिन्न शासकों के नामों का उल्लेख करता है और गौड़ (बोंगो) के धर्मपाल के शासक बनने का उल्लेख करता है। उसके दरबार में सेवा हेतु बहुत से ब्राह्मण समुदायों के आगमन को सम्भवतः प्राचीन असम में ब्राह्मण आव्रजन की पहली लहर के रूप में देखा जा सकता है, जिसने अंततः ब्राह्मणीय परम्पराओं को फैलाया। एक ब्राह्मण केंदुकोलाई की कहानी विशेष रूप से दिलचस्प है क्योंकि इन आख्यानों ने कामाख्या मंदिर में उपासना की प्रकृति और बाद में निचले असम क्षेत्र से ब्राह्मणों के आगमन को प्रभावित किया था। मध्यकालीन असम में ग़ियासुद्दीन बलबन के अभियान, इससे इस क्षेत्र में हुए ध्वंस तथा हानि को आँकते हुए, इसका सजीव वर्णन भी इसमें मिल जाता है, जो एक दुर्लभ जानकारी है। *कामरूपोर बुरँजी* को उच्च-स्तरीय माना जाता है, क्योंकि यह मध्यकाल में असम के ऐतिहासिक स्थान के लिए सामयिक अंतर्दृष्टि उपलब्ध कराती है। एक तथ्य जो *कामरूपोर बुरँजी* को अलग महत्व प्रदान करता है, वह है इसके द्वारा उपलब्ध

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

अहोम शासकों की सैन्य तथा राजनीतिक रणनीतियों और सत्ताधारी अभिजात्यों तथा असम के लोगों में मज़बूत देशभक्ति की भावना की जानकारी।

11.7.3 *पादशाह (बादशाह) बुरँजी*

यह पुनः एस. के. भुयान ही थे जिन्होंने *पादशाह बुरँजी* (दिल्ली के बादशाहों के इतिवृत्त) का अपने मूल रूप में संग्रह कर अंग्रेज़ी में एक आमुख और प्रस्तावना के साथ इसका 1935 में कामरूप अनुसंधान समिति द्वारा प्रकाशन करवाया। *पादशाह बुरँजी* असम के मुस्लिम इतिहास के लिए एक मूल्यवान स्रोत है जो इस क्षेत्र को एक महत्वपूर्ण तरीके से शेष भारतीय उपमहाद्वीप के साथ ब्रिटिश-आगमन से पूर्व जोड़ती है। असम हमेशा से मुसलमानों के आक्रमण की योजना में शामिल रहा था और कामरूप पर अधिकार करने का पहला प्रयास 1205 में, मुहम्मद बख्तियार द्वारा किया गया, जो एक खलजी तुर्क था। उत्तरी गुवाहाटी के एक शिलालेख के अनुसार यह अभियान प्राकृतिक आपदाओं के कारण असफल रहा था, जब मुस्लिम सेनाओं को उफनती नदी ने अपने में समा लिया था (भुयान 1947)।

इस *पादशाह बुरँजी* के तथ्यात्मक भाग को अन्य स्रोतों के साथ रखकर देखा गया है, जो मुस्लिमों के आक्रमण की गाथा का बखान करते हैं। इसमें भारत में उनके शासन के सदृढ़ीकरण और *मनसबदारी* जैसी नई प्रशासनिक प्रणालियों की शुरुआत, इसके बाद मुग़लों के आगमन का कालानुक्रमिक ढंग से वर्णन किया गया है। इसमें मध्यकालीन भारत में घटित होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं को दस्तावेज़बद्ध किया गया है। अहोम शासकों तथा मुग़लों के बीच आदान-प्रदान में सबसे महत्वपूर्ण विशेषता विभिन्न उच्च पदस्थ राज्याधिकारियों, जैसे बादशाह औरंगज़ेब, मीर जुमला, नवाब दिलेर ख़ान तथा अन्य, के साथ पत्रों के माध्यम से होने वाला आदान-प्रदान है जिससे इन कूटनीतिक पात्राचारों में प्रयुक्त सार्वदेशिक भाषा का पता चलता है। *पादशाह बुरँजी* की कुछ पांडुलिपियों में पायी जाने वाली उर्दू मिश्रित फ़ारसी की दिलचस्प प्रविष्टियाँ *बुरँजियों* की समय-विशेष में उपस्थिति का संकेत करती हैं, यद्यपि यह प्रवृत्ति बाद के समय में देखने को नहीं मिलती है।

11.7.4 *त्रिपुरा बुरँजी*

त्रिपुरा बुरँजी का संकलन 1724 में दो असमी राजदूतों – रत्न कंडली सरमा और अर्जुन दास बैरागी – द्वारा किया गया जिन्हें *स्वर्गदेव* रूद्र सिम्हा ने त्रिपुरा में राजदूत के रूप में भेजा था और जो त्रिपुरा के साथ अहोम संबंधों के इतिहास के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत है, इसके साथ ही मुग़ल भारत पर भी यह नया प्रकाश डालती है। *त्रिपुरा बुरँजी* की मूल पांडुलिपि में विभिन्न कूटनीतिक संचारों और अंतर-संवादों पर, जो अहोम और त्रिपुरा के शासकों के बीच घटित हुए, 40 अध्याय थे। यह एक ओर तो 18वीं शताब्दी के आरंभ में मौजूद परस्पर संवाद के स्तर को प्रकट करता है और दूसरी ओर अहोम शासक की पुरानी सीमाओं के बाहर अपने प्रभाव को विस्तृत करने की महत्वाकांक्षा को भी प्रकट करता है। इन दोनों राजदूतों को 1714 में तिपेरा (त्रिपुरा) के राजा ने रत्नमानिक के दरबार में भेजा था, 'मुग़लों के विरुद्ध हिंदू शासकों के संघ के निर्माण के उद्देश्य के साथ' (गोगोई 2020)। इस प्रकार *पादशाह बुरँजी* की तरह *त्रिपुरा बुरँजी* का असम की *बुरँजियों* में एक विशेष स्थान है जो इस क्षेत्र को बाहर की दुनिया के साथ जोड़ती है। *त्रिपुरा बुरँजी* को विद्वानों ने इसमें निहित जानकारी की प्रकृति के कारण एक यात्रा-वृत्तांत के रूप में भी देखा है क्योंकि इसमें दोनों पक्षों के बीच हुए संवादों के सरकारी वृत्तांत के साथ ही लोगों, स्थानों और रीतियों का भी वर्णन है। इसके लेखकों ने त्रिपुरा की अपनी यात्रा और वहाँ से वापसी के दौरान बीच में पड़ने वाले स्थानों का वर्णन करने के लिए इस वृत्तांत का उपयोग किया है। इस तरह से यह इतिवृत्तांत बाद के अहोम काल में यात्रा-दस्तावेज़ों के लिए मार्गदर्शक बना रहा।

11.7.5 *तुंगखुंगिया बुरँजी*

यह अहोमों के आख़िरी शासक वंश का इतिहास है जिसका समापन ब्रिटिशों के साथ यंडाबू की संधि पर हस्ताक्षर किए जाने के साथ हुआ। तुंगखुंगिया वंश ने असम में 1681-1826 तक 145 वर्षों तक शासन किया था। इस इतिवृत्त के मूल लेखक श्रीनाथ दुआरा बरबरुआ थे जिन्होंने *तुंगखुंगिया बुरँजी* को मार्च 1804 में संकलित करना शुरू किया। यद्यपि इस संकलन में केवल तुंगखुंगिया काल के उत्तरार्द्ध, 1751 से 1806 तक का काल, के वृत्तांत शामिल थे, लेकिन उस समय की जटिल राजनीतिक

और सामाजिक प्रवृत्तियों को समझ पाने में इसकी प्रासंगिकता संदेह से परे है। इसके प्रथम राजा गदाधर सिंह के अधीन इसकी स्थापना के उथल-पुथल भरे काल का वर्णन करते हुए, जिसने 11 वर्षों का लंबा संकट-काल देखा था और जिसका परिणाम आने वाले समय में अहोम शासन के क्रमिक रूप से कमज़ोर पड़ जाने पर हुआ, यह असम के इतिहास के बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्से के विषय में बताती है। तुंगखुंगिया वंश से पहले अहोम राज्य अत्यधिक संकट की स्थिति में था क्योंकि इसके अत्यधिक महत्वाकांक्षी मंत्री, विशेष रूप से लालूकसोला बरफुकान जिसने बंगाल के सूबेदार के नायब मंसूर ख़ान के साथ मिलकर स्वयं संप्रभु बनने की कोशिश की थी, तत्कालीन राजा सुदईफा पर्वतीय राजा को अपदस्थ करके और सभी संभावित प्रतिस्पर्धियों को ख़त्म करके या उन्हें अयोग्य बनाकर अर्थात उनका अंग-भंग या उनके अंगों को क्षति पहुँचाकर क्योंकि अहोम शासन के अनुसार केवल शारीरिक दोष से मुक्त और सक्षम शरीर धारण करने वाले राजकुमार को ही संप्रभु के तख्त पर आसीन किया जा सकता था, उसने सत्ता और राजा के प्राधिकार का अपहरण कर लिया। इन अराजक परिस्थितियों में राजकुमार गोडापानी को लालूकसोला के आतंक के कारण छुपकर भागना पड़ा और उसकी पत्नी राजकुमारी जयमती कुंवरी को बंदी बना लिया गया। जयमती कुंवरी की कहानी असम की *बुरँजियों* में सर्वाधिक ख्यात आख्यान है, जिसने असमी मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है। गोडापानी को बाद में आनुवंशिक अधिकारियों द्वारा गजाधर सिंह के नाम से गद्दी पर बैठाया गया। इस इतिवृत्त का कई स्रोतों पर आधारित एक संपादित और विस्तृत आधुनिक संस्करण 1968 में एस. के. भुयान द्वारा *तुंगखुंगिया बुरँजी* के रूप में प्रकाशन करवाया गया था। *तुंगखुंगिया* नाम अहोमों के इस आख़िरी राजवंश के पूर्वजों के पैतृक स्थान ऊपरी असम से लिया गया है।

तुंगखुंगिया बुरँजी इस राजवंश के शासन के दौरान मुख्यतः राजाओं और उनके समयों का एक विवरण है, लेकिन यह साथ ही महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाक्रमों का वर्णन करती है, जैसे बर्मा की संकट पैदा करने वाली स्थिति जो अहोम संपत्ति का दोहन कर रही थी और अंतिम अहोम शासकों की बर्मी लोगों से युद्ध करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी से सहायता लेने की मजबूरी, किंतु जिसका अंततः परिणाम 1826 में यांडबू की संधि के द्वारा एक विदेशी सत्ता को अपनी संप्रभुता गंवा देने में निकला।

बोध प्रश्न-2

1) *बुरँजी* की ऐतिहासिक उत्पत्ति की चर्चा कीजिए।

....

....

....

2) भारतीय इतिहास के बृहद् परिप्रेक्ष्य में *बुरँजी* की ऐतिहासिक महत्ता की चर्चा कीजिए।

....

....

....

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने मध्यकालीन और प्राक्-आधुनिक मराठा राजव्यवस्था को समझने में गद्य विवरणों के रूप में *बखर* के महत्व की पहचान की है। महाराष्ट्र में, विशेष रूप से आज के समय में भी, ऐतिहासिक अतीत का स्मरण सार्वजनिक जीवन का एक विशेष लक्षण है। *बखर* के विवरण धर्म और ब्राह्मणीय मूल्यों के अन्य रूपकों की अभिव्यक्ति के माध्यम से इस क्षेत्र के विचारधारात्मक अंतर-प्रवाह को व्यक्त करते हैं, जिसने इस क्षेत्र में सर्वजनों पर हिंदुओं की श्रेष्ठता की उद्घोषणा की है। *सभासद* और *चिटनिस बखर* शिवाजी के जीवन-चरित का रेखाचित्र प्रस्तुत करते हैं, जिसे प्रशासनिक और राजनीतिक उपलब्धियों के लिए सम्मानित और याद किया जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने मुग़लों को चुनौती दी थी। शासकों के जीवन-चरित्र की रचना करने के अतिरिक्त *बखर* प्रमुख परिवारों की वंशावलियों तथा महत्वपूर्ण युद्धों के वृत्तांतों को भी शामिल करते हैं। भले ही इनकी ऐतिहासिकता बहस का विषय रही हो, तथापि ये क्षेत्रीय वृत्तांत अतीत के संबंध में, साहित्यिक अलंकरणों के माध्यम से रचनात्मक कल्पना का उपयोग करते हुए, एक वैकल्पिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस इकाई के *बुरँजी* वाले भाग में हमने इस इतिहास लेखन की परम्परा के विषय में जाना जो मूल रूप से पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया से आई ऐतिहासिक परम्परा थी। इस पर भारत की विभिन्न ऐतिहासिक परंपराओं का प्रभाव भी पड़ा। सारांशतः कहा जा सकता है कि असम के इतिहास का पुनर्निर्माण मुख्यतः *बुरँजियों* के आधार पर ब्रिटिश और आधुनिक असम के इतिहासकारों ने किया है।

11.9 शब्दावली

अहोम	नृजातीय रूप से शान समूह के लोगों से संबंधित जिनका दक्षिण-पूर्व एशिया से आव्रजन हुआ था। ऐतिहासिक रूप से वे दक्षिण-पूर्व एशिया, दक्षिणी चीन, बर्मा/म्यांमार तथा असम में फैले हुए थे। असम में उन्हें ताइ-अहोम या अहोम (असमी) लोगों के रूप में जाना जाता है
आख्यायिका	इसका तात्पर्य कथा से होता है तथा इसकी उत्पत्ति पुरातन पौराणिक आख्यायिकाओं से हुई है, जिन्हें ऐतिहासिक घटनाओं या चरित्रों पर आधारित साहित्य या रचनात्मक कथाओं के रूप में समझा जाता है
बखर	*बखर* मराठी में लिखित गद्य ऐतिहासिक आख्यान हैं। 17वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक महान् शासकों की जीवनियों, प्रमुख परिवारों की वंशवालियों तथा महत्वपूर्ण युद्धों के विवरणों से संबंधित 200 से भी अधिक *बखर* रचे गए हैं, जो इस क्षेत्र की राजव्यवस्था और प्रशासन पर रोशनी डालते हैं
बुरँजी	अहोम वंश के ऐतिहासिक वृत्तांतों की एक शैली, जिसने 1228-1826 से असम के बड़े हिस्से पर शासन किया था
गद्य	लिखित या वाचिक भाषा जो पद्य न हो
पुथी(याँ)	पांडुलिपि, न केवल *बुरँजी* पांडुलिपियाँ बल्कि सभी प्रकार की पांडुलिपियाँ, जिनका उपयोग अगली पीढ़ी के *बुरँजी* लेखकों द्वारा *बुरँजियों* की पुनर्रचना के लिए किया जाता था
शाकावली	शब्दशः, वर्षों का क्रम या परिवारों और वंशानुगत अधिकारियों द्वारा तैयार किए गए इतिवृत्त जिनमें जन्म, मृत्यु, राजतिलक, सिंहासनारोहण तथा विवाह का ब्योरा दर्ज किया जाता था
स्वर्गदेव	अहोम राजा को *स्वर्गदेव* पुकारा जाता था, शाब्दिक रूप से जिसका अभिप्राय स्वर्गिक राजा या स्वर्ग से अवतरित राजा से है, जो संकेत करता था कि अहोम राजा देवताओं के वंशज थे
यवनी	यवनों से संबंधित (आक्रमणकारी, विदेशी तथा मुस्लिम)

11.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 11.2
2) देखें भाग 11.3 तथा इसके उप-भाग
3) देखें उप-भाग 11.3.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 11.6
2) देखें भाग 11.7 तथा इसके उप-भाग

11.11 संदर्भ ग्रंथ

बरुआ, हरकान्त, (1930) *असम बुरँजी ऑर ए हिस्ट्री ऑफ असम,* (संपा.) एस. के. भुयान (गुवाहाटीः डिपार्टमेंट ऑफ हिस्टॉरिकल एंड एंटीक्वेरियन स्टडीज़).

भुयान, एस. के., (1930) *कामरूप बुरँजी* (गुवाहाटीः डिपार्टमेंट ऑफ हिस्टॉरिकल एंड एंटीक्वेरियन स्टडीज़).

भुयान, एस. के., (1947) *एनाल्स ऑफ द दिल्ली बादशाहत* (गुवाहाटीः डिपार्टमेंट ऑफ हिस्टॉकिरल एंड एंटीक्वेरियन स्टडीज़).

भुयान, सूर्य कुमार, (2013, पुनः मुद्रित [1949]) *अर्ली ब्रिटिश रिलेशंस विद* असम (गुवाहाटीः ई बी एच पब्लिशर्स).

देशपांडे, अनिरुद्ध, (2013) 'मराठास, राजपूत्स एंड अफगांस इन मिड एटींथ सेंचुरी इंडियाः भाऊसाहेबांची *बखर* एंड द आर्टिकुलेशन ऑफ़ कल्चरल डिफरेंस इन प्री कोलोनियल इंडिया', नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम एंड लाइब्रेरी, ओकेजनल पेपर, *हिस्ट्री एंड सोसाइटी,* न्यू सीरीज 10.

दीक्षित, राजा, (2009) 'हिस्टोरिकल राइटिंग्सः चैलेंज एंड रिस्पॉन्स', श्रद्धा कुंभोजकर, (संपा.) 19th *सेंचुरी महाराष्ट्रः अ रिएसेसमेंट* (कैंब्रिजः कैम्ब्रिज स्कॉलर्स पब्लिशिंग), पृ. 11-20.

देशपांडे, प्राची, (2004) 'कास्ट एज मराठाः सोशल कैटेगरीज कोलोनियल पॉलिसी एंड आइडेंटिटी इन अर्ली ट्वेंटीयथ सेंचुरी महाराष्ट', *द इंडियन इकोनामिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू,* भाग 1, पृ. 7-32; doi/10.1177/001946460404100102

देशपांडे, प्राची, (2007) *क्रिएटिव पास्ट्स हिस्टॉरिकल मेमोरी एंड आइडेंटिटी इन वेस्टर्न इंडिया 1700-1960* (दिल्लीः परमानेंट ब्लैक).

दिवेकर, वी. डी., *सर्वे ऑफ मेटेरियल इन मराठी ऑन द इकोनामिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*-1, भाग XV, No. 1, पृ. 81-117.

गैट, सर एडवर्ड, (2006 पुनःमुद्रित) *हिस्ट्री ऑफ असम* (नई दिल्लीः सुरजीत पब्लिकेशंस).

गुहा, अमलेंदु (1983) 'द एहोम पॉलीटिकल सिस्टम एंट्री इन टू द स्टेट फॉरमेशन प्रोसेस इन मिडिवल असम (1228-1714)', *सोशल साइंटिस्ट,* भाग 11, नं. 12 (दिसम्बर.), पृ. 3-34.

गुहा, सुमित, (2004 [क]) 'स्पीकिंग हिस्टॉरिकली द चेंजिंग वॉयसेस ऑफ हिस्टॉरिकल नरेशन इन वेस्टर्न इंडिया, 1400-1900', *अमेरिकन हिस्टॉरिकल* रिव्यू, पृ. 1084-1103.

गुहा, सुमित, (2004 [ख]) 'ट्रांजिशंस एंड ट्रांसलेशंस रीजनल पावर एंड वर्नाकुलर आइडेंटिटी इन डेक्कन 1500.1800', *कंपैरेटिव स्टडी ऑफ साउथ एशिया, अफ़्रीका एंड मिडल ईस्ट,* 24 (2): 23.31.

गुहा, सुमित, (2019) *हिस्ट्री एंड कलेक्टिव मेमोरी इन साउथ एशिया 1200-2000* (सिएटलः यूनिवर्सिटी ऑफ वाशिंगटन प्रेस), पृ. 83-118.

गोगोई, भास्कर ज्योति, (2020) 'लुकिंग इन (/): ए केस स्टडी ऑफ नॉर्थईस्ट विद स्पेशल रेफरेन्स टू त्रिपुरा बुरँजीस (1724)', *रूपकथा जर्नल ऑन इन्टर डिसीप्लीनरी स्टडीज़ इन ह्यूमेनिटीज़,* भाग 12:3.

गॉर्डन, स्टीवर्ट, (1993) *न्यू कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडियाः द मराठाज़, 1600-1800* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

हार्टमैन, जॉन एफ., (1997) 'फोनसावडान ताइ-अहोमः अहोम *बुरँजी* (ताइ अहोम क्रॉनिकल्स)', रिव्यू आर्टिकल, *जनरल ऑफ साउथ ईस्ट एशियन हिस्ट्री,* भाग. 28, नं. 1 (मार्च.), पृ. 227-229.

कर्माकर, दीपेश, (2011), 'अंडरस्टैंडिंग प्लेस नेम्स इन महिकावातिची बखरः अ केस ऑफ मुंबई थाने रीजन', XXX *एनुअल कांग्रेस ऑफ द प्लेस नेम इन सोसायटी इन इंडिया,* कल्याण.

कुलकर्णी, ए. आर., (2004) 'ट्रेंड्स इन मराठा हिस्टॉरियॉग्राफीः विश्वनाथ काशीनाथ रजवाडे (1863-1926)', *इंडियन हिस्टॉरिकल रिव्यू,* भाग XXIX, नं. 1-2 (जनवरी तथा जुलाई 2002), पृ. 115-44.

मुजावर, मुफ़ीद, (2018) 'विजिटिंग अर्लीस्ट मराठी नैरेटिव ऑफ मुस्लिम क्वेस्ट रिप्रेजेंटेशंस ऑफ मुसलमान इन महिकावातिची बखर', *एन इंटरनेशनल जनरल ऑफ कोलकाता सेंटर फॉर कंटेंपरेरी स्टडीज (KCCS)*, इंक्लूसिव स्पेशल आर्टिकल्स, भाग 1, नं. 12.

नाग, सजल, (2015) 'कंटेस्टिंग एक्सक्लूजन रेजिस्टिंग इंक्लूज़नः कांट्रडिक्ट्री ट्रेंड्स इन हिस्टॉरिकल रिसर्च इन नॉर्थ ईस्ट इंडिया फ्रॉम द नाइंटीन्थ टू द ट्वेंटीयथ सेंचुरी', सब्यसाची भट्टाचार्य, (संपा.) *अप्रोचएज़ टू हिस्ट्रीः एसेज़ इन इंडियन हिस्टॉरियोग्राफी* (दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

नरवेकर, अनिल, 'सोर्सेज ऑफ मराठा हिस्ट्री, इंडियन सोर्सेज', Academia.edu. पृ.1-309.

पुरकायस्थ, सुदेशन, (2008) 'रिस्ट्रक्चरिंग द पास्ट इन अर्ली ट्वेंटीयथ सेंचुरी असमः हिस्टॉरियॉग्राफी एंड सूर्य कुमार भुयान', रज़ीउद्दीन अकील एंव पार्था चटर्जी, (संपा.) *हिस्ट्री इन द वर्नाकुलर* (रानीखेतः परमानेंट ब्लैक), पृ. 173-4; https://archive.org/details/ annalsofthedelhi035479mbp/page/n11 mode/2up

सैकिया, अरूपज्योति, (2008) 'हिस्ट्री, बुरँजी एंड नेशनः सूर्य कुमार भुयान'स हिस्ट्रीज़ इन ट्वेंटीयथ सेंचुरी असम', *द इंडियन इकोनामिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, भाग 45, नं. 4.

सैकिया, यास्मीन, (2006) 'रिलीजन नॉस्टैल्जिया एंड मेमोरीः मेकिंग एन एनिशिएंट ताइ-अहोम आईडेंटिटी इन असम एंड थाईलैंड', *द जरनल ऑफ एशियन स्टडीज़*, भाग 65, नं. 1 (फ़रवरी), पृ. 33-60.

सेन, सुरेन्द्रनाथ, (1920) *एक्सप्ट्र्स एंड डॉक्युमेंट्स रिलेटेड टू मराठा हिस्ट्री*, भाग 1: *शिवा छत्रपति बीइंग अ ट्रांसलेशन ऑफ सभासद बखर विद एक्सट्रैक्ट फ्रॉम चिटनिस एंड शिव दिग्विजय विद नोट्स* (कलकत्ताः यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता).

सिंह, चेतन, (2018) *हिमालयन हिस्ट्रीः इकोनामिक पॉलीटिकल इंस्टीट्यूशंस* (दिल्लीः परमानेंट ब्लैक).

स्कंद, प्रिया, (2017) 'री-कॉटेक्स्च्युलाइज़िंग द मिडिवल इंडियन पास्टः वर्नाकुलर नैरटिव ट्रडिशंज़', *इंक्लूसिवः* स्पेशल आर्टिकल, भाग 1, नं. 10-11.

थापर, रोमिला, (2003) *कल्चरल पास्ट्सः ऐसे इन अली इंडियन हिस्ट्री* (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

विसना, विक्रम, (2020). 'सावरकर बिफोर हिंदुत्वः सोवरनिटी रिपब्लिक्निज़्म एंड पापुलिज़्म इन इंडिया, *c*.1900-1920' *मॉडर्न इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री*, 1-24; doi:10.1017/S 1479244320000384

विंक, आंद्रे, (1985) *लैंड एंड सॉवरनिटी इन इंडिया* (हैदराबादः ओरियंट लोंगमैन).

11.12 शैक्षणिक वीडियो

बखरः ऐजुकेश्नल वीडियोज़

https://www.youtube.com/watch?v=B0RcB3o4oMY

सभासद बखर (इतिहासाच्या साधनांची ओलख – भाग 1)

https://www.youtube.com/watch?v=B0RcB3o4oMY